-विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

बिन्दु

चन्दर भटनागर

मूल्य पच्चीस रुपये / प्रथम संस्करण, 1989 / आवरण शिल्पी हरिपाल त्यागी / प्रकाशक विवेक पब्लिशिंग हाउस, धमाणी मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर / मुद्रक ए० पी० प्रिंटर्स, द्वारा सविता प्रिंटर्स, दिल्ली

आमुख

श्रीमती चन्दर भटनागर दीर्घकाल तक शिक्षा विभाग मे राज्य-सेवा करके सेवा-निवृत्त हुई हैं और इस दीर्घ सक्रिय जीवन मे जो खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं उनको छोटी-बड़ी कहानियो के रूप मे चित्रित करने का मानस बना चुकी हैं। उनके जीवन के प्रति इसी लगाव से प्रेरित लिखा हुआ यह छोटा कहानी संग्रह है।

इसकी कई कहानियों मे जीवन के—खासकर स्त्री जीवन के—मधुर शब्द चित्र भी हैं, कटु अनुभव भी। यद्यपि नवलेखन की कुछ दुर्बलताएं—चित्रण मे कहीं-कहीं यथार्थ का सीमोल्लंघन आदि—है किन्तु अपने पात्रो के साथ उनका आत्मीय भाव सर्वथा परिलक्षित है।

मानव-स्वभाव और बदलते परिस्थितिजन्य परिवेशो का अच्छा चित्रण 'विडम्बना', 'सहारा' आदि कहानियो मे हुआ है। कुछ कहानिया यथा 'स्वप्न-मृत्यु' मे कई मानव दुर्बलताओ को उभारा गया है। इसी तरह 'सहायता' कहानी मे समाज सेवक कहे जाने वाले दम्भियो की पोल खोलने की कोशिश की गई है।

कुल मिलाकर संग्रह अच्छा बन पड़ा है। लेखन-कर्म मे शुरू की कुछ लड़खड़ाहट इसमे जरूर है परन्तु उत्कर्ष और विकास की संभावना व्याप्त है।

मैं श्रीमती चन्दर भटनागर के इस प्रयास का स्वागत करता हू और आशा करता हू कि यदि वे लगन और परिश्रम के साथ इस कार्य में लगी रही तो उनकी संवेदना का क्षेत्र समाज के निचले और दु खी वर्ग की ओर और भी विस्तृत होगा।

विष्णुदत्त शर्मा
पूर्व-अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी, जयपुर

आत्मकथन

'बिन्दु' में सग्रहीत सभी कहानिया मूलत उद्देश्यपरक हो, यही मेरा प्रयास रहा है। वास्तव मे शिक्षा व सामाजिक चेतना से जुडी ये कहानिया मनोविज्ञान पर आधारित हैं।

इन कहानियो के माध्यम से मैं यह कहना चाहती हू कि जहा बालको को अपने माता-पिता, गुरुजनो, बड़ों का सम्मान करते हुए उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए, वहीं बडो का कर्तव्य है कि वे बालको की सहज क्रियाओ, शारीरिक एव मानसिक विकास को स्वीकारते हुए उनकी समस्याओ को हल करने में उनका सहयोग करें। माता पिता, अभिभावको को कुछ समय निकालकर बालको के साथ व्यतीत करना चाहिए जिससे बालको के मन मे उनके प्रति अपनत्व का भाव उत्पन्न हो और वे घर की ओर आकर्षित रहें। बडो की, घर के सम्मान की आत्मसम्मान की सुनागरिक बनकर रक्षा कर सकें।

महिला-वर्ग का उत्थान मेरे जीवन का लक्ष्य रहा है। उस लक्ष्य को भी प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। ऊच नीच की विषमता को हटाना हमारा कर्तव्य है। इस बात को ध्यान मे रखा गया है।

मैं आदरणीय श्रीयुत् विष्णुदत्त शर्मा, राजस्थान साहित्य अकादमी के भूतपूर्व अध्यक्ष की आभारी हू जिन्होने मेरे इस प्रथम प्रयास के कहानी सग्रह को आद्यान्त पढने का कष्ट उठाया है।

मैं आशान्वित हू कि सुधी पाठक इस 'परिस्थिति प्रधान' कहानी-सग्रह को आत्मीयता से ग्रहण करेंगे।

—चन्द्र भटनागर

सी 30, लाजपत मार्ग,
सी-स्कीम, जयपुर 302001

आराध्य गुरुदेव
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
के
चरणों में समर्पित

क्रम

बिन्दु

रेत की लहरो मे सूय की तीव्र तपन को सहता बि दु ऊट की भाति बडे बडे डग भरता उस वीरान विस्तृत जैसलमेर के सीमावर्ती रेत के मैदान मे आगे-आगे बढ रहा था। वह न पीछे देखता था, न इधर उधर। उसको तो बस आगे का गन्तव्य मानो खीचे लिये जा रहा था। तन का छरहरा, रग का सावला, बि दु कोई होगा बाईस तेईस वप का। गहरे भूरे रग की पैट पर हल्के भूरे रग की टी शट पहन रखी थी उसने। उसके कधे से एक झोला लटक रहा था जिसमे अनुमान लगाने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि पहनने के एक दो कपडे रखे हों। परन्तु ध्यान से देखने पर ऐसा आभास हुआ कि उसमे डिब्बानुमा भी कोई वस्तु है क्योकि कपडो के बीच से कोने उभर रहे थे।

बिन्दु, सडक को छोडकर, रेत के टीलो पर ऊपर नीचे चल रहा था। वह रेत म अपने डग को बार बार सम्भालता था। आखो पर लगे चश्मे को उतारकर आखो पर टपकते पसीने को पोछता। बिन्दु का सब विघ्न-बाधाओ को और कष्टो को झेलते हुए आगे बढते रहना देखकर एक बार तो सूय भगवान भी चक्कर मे पड गए और उन्हे सकोच का अनुभव हुआ कि यह बेचारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इतना उत्प्रेरित है और व हैं कि उसकी सहायता करने के स्थान पर अपनी त्वचाभेदी किरणो से कष्ट पहुचा रह हैं। सूय न सामने स आते एक छोटे से बादल मे अपने चमकते मुह को ढक लिया। बिन्दु ने ठडी सास ली और क्षण भर के लिए

बादल की चीनी वाली चादर की ओर धन्यवाद करने के आशय से देखा। उसे इस सुखदायी शीतलता का अनुभव अवश्य हुआ था। सच में, चिलचिलाती तपन वाली धूप में चलने वाला ही एक छोटे-से बबूल के पेड़ की छाया में भी कूलर की ठंडी हवा के आनन्द को मानता है। परन्तु शायद बिन्दु के पास उस आनन्द का भोगने के लिए अभी समय नहीं था। इसी कारण वह शीघ्रता से अपनी राह की ओर फिर तेजी से चल पड़ा जैसे कि यदि एक क्षण भी रुककर उसने विलम्ब किया तो किसी रेलगाड़ी या जहाज के छूट जाने का डर हो।

अग्नि स्वरूप सूर्य फिर चमक उठे। सूर्य ने विचार किया—"जब बिन्दु को विश्राम की आवश्यकता नहीं है तब मैं अपनी सौर ऊर्जा को धरती पर पहुँचाने में विलम्ब क्यों करूँ! जब यह क्षुद्र जीव अथक है तब मैं भी चलता चलता क्यों रुकूँ।"

बिन्दु ने विद्युत की-सी चपलता से पीछे मुड़कर देखा। एक ओर से सड़क पर पुलिस के चार पाँच सिपाहियों से भरी एक जीप उसी की ओर आ रही थी। बिन्दु अब प्रायः दौड़ने लगा। एकाएक बिन्दु के पैर रुके और वह झट से रेत के टीले पर लेटकर अपने हाथों से जल्दी जल्दी रेत को इधर उधर करने लगा। थोड़ी ही देर में बिन्दु खड़ा हो गया और आगे चलने लगा। सूर्य ने देखा कि अब बिन्दु के पास वह थैला नहीं था। बिन्दु विश्वस्त था। वह सोच रहा था कि उसकी इससे पहले की सफलताओं के आधार पर ही बाप ने उसके चार और साथियों के सामने यह काम उसे दिया था। वह पुलिस को मामा देने में माहिर है। इस बार भी वह चालाकी से अवश्य ही बच निकलेगा।

बिना अधिक देर किए बिन्दु ने हिरण की भाँति छलांगें लगाते हुए सामने उगी एक बड़ी-सी कँटीली झाड़ी के पीछे डुबकी लगायी। हाथों-पैरों से वैसे एक चतुर तैराक पानी को हटाता हुआ आगे बढ़ता है, वैसे ही वह भी रेत में घुस गया। उसने उस गड्ढे में लेटकर अपने को पूरा रेत से ढक लिया। केवल नाक और मुँह को पृथ्वी की सतह के साथ रखा। उसी समय तेज हवा के झोंके आने के कारण बिन्दु के मुँह और नाक पर भी रेत आच्छादित हो गई। वह उस गड्ढे में बिल्कुल सीधा नहीं लेटा

था। करवट लेकर लेटने से रेत सीधे उसके मुह, नाक या आखो मे आसानी से नही जा सकती थी। ऐसा लगता था कि बिन्दु को इस रेगिस्तान के व्यवहार से पूर्व परिचय था।

बिन्दु का अनुमान था कि उसको अभी तक किसी ने नही देखा है परन्तु वह भूल कर रहा था क्योकि भगवान तो सब व्यक्तियो के सब कार्यों को देखते हैं और आज भी सूर्य भगवान ने उसको एक एक कदम पर और उसके एक एक कार्य को देखा था। बिन्दु का यह इस प्रकार का सातवां कारनामा था। वह चरस गाजा इधर-उधर पहुचाया करता था। शीघ्र धन कमाना उसने अपने जीवन का ध्येय बना लिया था, चाहे वह रास्ता गलत ही हो। पुलिस को धोखा देकर अड़चनो को पार करना, अपनी जान को जोखिम मे डालना, अपनी बहादुरी मे शामिल करता था। वह इस समय पुलिस से बचने के लिए रेत के बिस्तर मे मुह हाथ छिपाकर ऐसे लेट गया था जैसे सर्दियो म ठड से बचने के लिए हम गद्दे और रजाई से पूरे शरीर को ढककर सो जाते हैं। बिन्दु ने अपने आपको शाबाशी दी और मन ही मन बोला—अब पुलिस का बाप भी उसे ढूढ नही सकेगा।

बिन्दु को कुछ देर पहले तक सडक पर, जीप के पहियो की गडगडाहट का स्वर हवा के झोको के साथ-साथ सुनाई पड रहा था। परन्तु उसके ऊपर रेत के अधिक एकत्र हो जाने के कारण अब वह उस आवाज को सुन सकने मे असमर्थ हो गया था। उसे एक बार विचार आया—उठे। उठकर देख ले कि पुलिस के सिपाही उसे न ढूढ सकने के कारण वापस तो नही चले गए। परन्तु यह क्या, उसे उस रेत मे पडे पडे जोर का एक धक्का लगा। धक्के के साथ ही उसे अनुभव हुआ कि उसके पेट पर पडा रेत भी खिसक रहा था। वह हिला नही। चुपचाप हो पडा रहा।

बात यो हुई कि जब पुलिस ने आते समय, दूर रेत के टीले पर, किसी को चलते हुए देखा था तब उन्हे निश्चित रूप से विश्वास हो गया था कि सूचनानुसार वह नामी स्मग्लर हरिसिंह के साथी को ही देख रहे हैं। उस दिशा, स्थान एव सडक का उस सूचना मे वर्णन था। योजना-बद्ध विधि से पुलिसवाले, बिन्दु का पीछा करने के लिए, उधर मुडती सडक पर ही अपनी जीप दौडा रहे थे। वे दूर छोटे दीखने वाले व्यक्ति, बिन्दु को भी

देखते जा रहे थे जिससे कि वह धोखा देकर आंखों से ओझल न हो जाए। उसी समय एक भेड़िया भागता हुआ सड़क पार करना चाह रहा था। वह जीप से टकरा गया। अचानक भेड़िये को सामने देखकर ड्राइवर ने जीप संभाली और ब्रेक लगाकर रोकी। भेड़िया डरकर, उन लोगों पर गुर्राया और फिर उन पर लपका। ग्रुप के इंचार्ज ने घटाक से उस पर गोली दाग दी। गोली भेड़िए की टांग पर लगी। वह कराहता, लंगड़ाता सरपट भाग लिया—दूर और दूर। वह एक झाड़ी के पीछे भाग कर छिप गया। जीप के सवारों ने उसका पीछा किया। सिपाहियों को क्रोध आ रहा था कि इस भेड़िये के बीच में आ जाने से व्यक्ति, जो इधर उधर होकर उनकी नजर से गायब हो गया था। वे सोच में पड़ गए थे कि जो व्यक्ति अभी सामने दिखाई दे रहा था वह कैसे और कहां लुप्त हो गया। क्या उसे आकाश खा गया या धरती निगल गई? या फिर वह भूत पिशाच बनकर हवा में गायब हो गया? इंचार्ज ने आदेश दिया कि इस भेड़िये को जान से मार डालें। सिपाही जीप से उतरकर उधर झाड़ी की ओर बढ़े। बंदूक चलाकर भेड़िए को मार दिया। भेड़िया चित गिर पड़ा। भेड़िये को मारकर उन्होंने अपना क्रोध शान्त किया।

इंचार्ज ने एक सिपाही को आज्ञा दी कि वह इस भेड़िए को उठाकर अपनी जीप के पीछे एक रस्सी से बांध ले। बोला—"कमबख्त वह स्मगलर का साथी, इसी जंगली भेड़िए के कारण हमारी गिरफ्त से निकल भागा है। वह इतनी जल्दी कहां पाताल में समा गया कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

सिपाही भेड़िये को उठाने के लिए झाड़ी के पास पहुंचे। उन्होंने भेड़िए की दोनों पिछली टांगें रस्सी से बांध दीं। उसे उठाकर चलने लगे। जैसे ही उठाने के लिए उन्होंने धरती की रेत पर पैर जमाये और नीचे की ओर झुके तो उन्हें उस रेत में से हल्की सी आवाज आयी। वह आवाज कराहने की थी—"हाय! ई ई ई।" उन्हें कुछ समझ नहीं आया। एक सिपाही ने बताया—"इस बांस पर जब ही मेरा पैर पड़ा तभी ऐसी आवाज सुनाई पड़ी है। यह क्यों?" उसने दुबारा उस बांस पर पैर रखा। फिर वही धीमी आवाज— ऊ ई ई ई।"

इचाज आफिसर को बुलाया गया। उनसे बातचीत करने के पश्चात् निर्देशानुसार वहा से रेत हटाई गई। ज्यों ही बास के पास से रेत हटाने लगे तो रेत वही से नही वरन् उसके आसपास से भी इधर-उधर हिलने लगी। एक बास की पोरी, सास लेने के लिए बिन्दु ने मुह मे रखी थी। जैसे जैसे सिपाही के पैर बाम पर पड़ते थे वैसे वैसे वह बास बिन्दु के मुह मे इधर उधर टकरा कर जख्म करता था। इसी कारण बिन्दु के मुह से कराहने की आवाज निकल आती थी। सिपाहियों ने रेत लगभग हटा दी थी। उन्हे अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब उन्होंने एक भला-चगा आदमी उनकी ओर घूरता हुआ, जिन्दा उस गड्ढे मे पड़ा देखा।

सिपाहियो को यह समझते देर न लगी कि वह वही व्यक्ति है जिसका वे पीछा कर रहे थे और जिसकी उन्हे तलाश थी। सिपाहियो ने उसे उस गड्ढे से बाहर आने के लिए कहा। बिन्दु चुपचाप रहा। सुनसटट। वही पड़ा रहा। ऊपर से रेत बहुत गर्म थी। फिर भी उसने उस रेत को इधर-उधर कर उसमे घुसने की हिम्मत की थी। अपने हाथो से वह मुह ढकने लगा, तब एक सिपाही ने उसके दोनो हाथ पकडकर झटका दिए और गाली देते हुए कहा—"साले! बाहर निकल यहा से। तुम हरामजादो को ये सब काम करना मजूर है। अपनी जान की परवाह नही। बोल, तू किसके लिए यह काम करता है? कौन है तेरा बॉस?" सिपाही गुस्से मे चिल्लाकर पूछ रहा था।

बिन्दु चुपचाप गड्ढे से बाहर निकला। बोला कुछ भी नही। बोलता भी क्या? वह समझ रहा था कि वह ऐसे भी मारा जाएगा और वैसे भी। स्मगलर्स का यह उसूल होता है शायद कि उनका कोई साथी यदि पुलिस द्वारा पकड लिया जाए तो उस साथी को वे जान से मार डालने का भरसक प्रयत्न करते हैं जिससे कि उनके काम और ठिकानो का पता न लगे।

एक सिपाही ने जूते के ठुड्डे से बिन्दु के कमर पर मारा। बिन्दु लुढ़ककर गिर पड़ा। दूसरे ही क्षण वह अपने कपड़े झाड़कर खड़ा हो गया। बिन्दु के चेहरे पर न दुख के और न ही किसी प्रकार के कष्ट के चिह्न थे। शायद वह इन बातों का अभ्यस्त हो चुका था। इचार्ज ने कड़ककर उससे वास्तविक अड्डे के लिए फिर पूछा। पर वह था कि

बिंदुर बिटुर उन सिपाहियों को देखता रहा—चुपचाप काठ सा बना। न कोई शिकवा, न कोई शिकायत। न जिद् थी और न ही उसके चेहरे पर विद्रोह के कोई भाव थे। बिन्दु इस समय न तो धरती पर था और न ही आकाश मे। वह अधर म झूलता शून्य सा खड़ा था।

युवावस्था म जीवन एक सुहावना स्वप्न होता है। सब ओर रग बिरगे फूल ही नजर आते हैं। युवक काल्पनिक परियो के पखो पर बठकर ऊची-ऊची उडानें भरत रहत हैं। उ मत्त जवानी की तज हवा म युवा वग वास्तविक जीवन को समझन मे प्राय भूल कर बैठता है। परन्तु जीवन क कष्टो के अगारे अरमानो से पल्लवित फूलो को झुलस डालत हैं। प्राय भाग्य के य महल मृग मरीचिका बनकर ही रह जात हैं। ऐसे अनाडी युवा सोचते हैं कि उन्हे बहुत सा धन आसानी स प्राप्त हो जाएगा और व आराम से अपनी जिन्दगी अमीरो की भाति व्यतीत करेंगे।

बिन्दु भी जीवन को एक सुनहरा अवसर ही मानता था। वह चाहता था कि बहुत-सा धन शीघ्रतिशीघ्र प्राप्त कर ले। उसको क्या मालूम था कि जीवन उसके लिए एक विस्तृत रगिस्तान म इस प्रकार भटकने के अतिरिक्त और कुछ भी नही होगा—प्यास, लू आधी की थपेड, काटो की कसक ही उसके भाग्य म था।

बिन्दु पुलिस की जीप मे बैठा हुआ था। जीप रेत क टीलो को पार करती सडक पर उतर आयी। सब चुपचाप थे। इस समय बहस करने का कोई लाभ भी नही था। बिन्दु के दोनो हाथ पास पास थ क्योंकि उनम हथकडिया लगी हुई थी। वह हाथो को आपस म मल रहा था—क्या वह अपने किए पर पश्चाताप कर रहा था या फिर कोई नयी योजना बना रहा था?

कुछ दूर चलने के पश्चात बिन्दु न कहा— 'प्यास लगी है पानी मिलेगा?'

सिपाही हस पडे।

वह फिर बोला—"ठीक है। मैंने जो अपराध किया है उसकी सजा मुझे दे देना। परन्तु मुझे थोडा सा पानी तो दो।'

एक सिपाही न अपनी पानी की बोतल उठाकर उसकी ओर बढाई।

परन्तु वह स्वय पानी नहीं पी सकता था क्योंकि उसके हाथ बंधे हुए थे।

बिन्दु के मन मे कसक हुई। 'काश! मैं अपनी मा के शब्दो पर ध्यान देता। अपनी बहन की राखी की सौगन्ध को याद रखता। मेरी मा सात्विक प्रवृत्ति की हैं। मेरी बहन सादे व्यक्तित्व की और मैं ।

मा और बहन, दोनो के चिन्तायुक्त चेहरे बिन्दु के मन चक्षुओं के समक्ष घूमने लगे। उसे लगा कि वे आज भी उसके लिए चिंतित हैं। वे आज भी खाना खाने के समय उसकी इन्तजार करती हुई बैठी हैं। ठंडे पानी से भरा जग उसे खाने की मेज पर रखा दिखाई देने लगा। उसने लपककर उस जग को उठाना चाहा—खनन्नन् कर हथकडियां बोल उठी और बिन्दु को चौंका दिया। उसका दिवास्वप्न पल भर मे उड़नछू हो गया। उसकी समझ मे आ गया कि पानी का जग तो क्या अभी तो उसे घर की देहरी भी देखना नसीब नहीं होगा। सामने सिपाही ने अपनी पानी की बोतल उसकी ओर बढा रखी थी। वह कातर शब्दो मे बोला— कृपया मेरे मुह मे दो घूट पानी डाल दो।"

तब सिपाही खिलखी उडाते हुए हस पड़े। परन्तु इचाज के इशारे पर सिपाही ने उसके मुह मे दो-तीन घूट पानी डाल दिया। गला गीला होने पर बिन्दु को जैसे जीवन फिर मिल गया।

बिन्दु फिर विचारो के सागर मे डुबकियां लगाने लगा। मा ने हाथ पसारकर रोका था टोका था— 'बेटा, आज तू अभी मत जाना। आज तेरी बहन ससुराल से आ रही है। राखी का दिन है। ऐसा भी क्या जरूरी काम है जो आज भी रुक नहीं सकता! वह इतनी दूर से राखी बांधने, केवल राखी बाधने आ रही है। तुझे घर पर ही रहने के लिए कह गया है। तुझे घर पर न पायेगी तो बहुत निराश हो जाएगी। तू जब भी इस तरह कहीं जाता है तो दो तीन दिन तक लौटता नहीं है। बात क्या है बेटे! अपनी विधवा मा का भी तुझे ध्यान नहीं है। तेरी बाट जोहते-जोहते आखें धुधला जाती हैं। तू इतने दिन तक बाहर रहकर क्या काम करता है? क्या इन कार्मो से ही तुझे धन मिल सकता है और किसी आसान काम से नहीं?"

बिन्दु को अपनी मा का एक एक शब्द कानो मे सुनाई दिया। जब वह

किसी तक पर भी रुकने के लिए राजी नहीं हुआ था तब मा ने कहा था—"जा, चला जा। अब मेरा मुह मत देखना।" दिल-जली मा ने बिन्दु को हाथ से धक्का भी दिया था।

बिन्दु एकदम आकाशीय स्वप्न से जाग उठा। जीप ठहर गयी थी। जीप के झटके से ठहरने के कारण पास मे लगी सीट के लोहे का कोना कधे पर लगा था जो बिन्दु को मा के हाथ के धक्के का भ्रम दे गया था।

बिन्दु ने सामने देखा—पुलिस स्टेशन।

सूय भगवान यह कम देख रहे थे—बिन्दु को कुकर्मों की सजा तो भोगनी ही पडेगी।

सूय भगवान न निणय दिया।

विडम्बना

दूर पतली परत वाला धुआं ऊपर आकाश में उड़ता देख भूले राही, मनोज ने चैन की सांस ली। दोनों हाथों को आकाश की ओर उठाकर भगवान का शुक्र किया कि अब वह किसी न किसी बस्ती के पास पहुंच ही गया है। पर वह अपना झूठा परिचय देकर कहीं न कहीं तनिक विश्राम पा सकेगा।

भूख प्यास में तड़पता, रात के घुप्प अंधेरे में, खेतों की, जंगलों की ऊबड़ खाबड़ भूमि को गिरते-पड़ते लांघता रहा था वह। अब उसे विश्वास हो चला था कि प्रात की सूर्यरेखा उसे किसी गांव के किनारे ले आयी है। भागता ही रहा था रातभर। करता भी क्या? शहर के किनारे तो रुक नहीं सकता था। उसके पीछे पुलिस जो पड़ी हुई थी।

मनोज के पिता हरिचन्द के पास बैठे, मनोज के एक अध्यापक उनसे बात कर रहे थे— 'भाग्य को कोई टाल नहीं सकता। बालक को युवा होने की प्रक्रिया में दुनिया के सब रंग और परिस्थितियां देखनी पड़ती हैं। जिस वातावरण में बालक रहता है तथा जिन परिस्थितियों से वह गुजरता है—वे सभी उसके मन और विचारों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। बालक की जिस प्रवृत्ति के प्रवाह को अधिक अवसर प्राप्त हो जाता है, वही प्रवृत्ति बालक के व्यवहार में अधिक प्रदर्शित होती है। क्रमशः यही प्रवृत्ति बालक की एक आदत के रूप में उभरकर आती है। तत्पश्चात् व्यक्ति उस आदत के वशीभूत होकर कुछ क्रियाएं, न चाहते हुए भी करता

रहता है। इसी प्रकार कुछ आदतो ने मनोज के सुन्दर व्यक्तित्व को भी आच्छादित कर धूमिल कर दिया था।

पाचवी कक्षा म पढ रहा था उस समय मनाज, जब उसन जीवन म पहली बार अपनी मा के पस स दम रपये का नाट निकालकर चुपचाप अपन बस्ते मे रख लिया था और भोला बनकर मा को छला था। घर म मनोज को सब ही प्यार करत थे और समय-समय पर लगभग प्रत्येक शनिवार को स्कूल मे खच करन के लिए उसको पैसे भी देते थे—यह सोच कर कि बालक अपने हाथो से पैसे खच करके आनन्द का अनुभव करत हैं।

मनोज का परिवार मध्यमवर्गीय था। फिर भी माता पिता न अपनी दोनो सन्तानो, लडका और लडकी को अच्छी शिक्षा देन क लिए अच्छे स्कूलो मे दाखिल करवा रखा था। अच्छा खिलाना, अच्छा पहनाना और अच्छी शिक्षा—यही उनके जीवन का ध्येय था। बच्चे भी मा-बाप को बहुत प्यार करते थे। पढने मे होशियार थे। मनोज का मन तो पढाई म खूब लगता था। वह अध्यापको का स्नेहपात्र था। अध्यापक प्राय मनोज के माता पिता की प्रशसा करते थे कि घर की शिक्षा अच्छी है।

करीम मनोज की कक्षा म ही पढता था। उसके माता पिता का देहान्त उसके बचपन मे ही हो गया था। आजकल वह विधवा बूढी दादी के पास ही रहता था। वह करीम को बहुत लाड प्यार से रखती थी। करीम को ही अपन बुढापे का एकमात्र सहारा मानती थी। करीम उम्र म कक्षा के बालको स बडा था। करीम कद काठ का ऊचा और बलिष्ठ था। जब कभी अध्यापक का आने मे देर हो जाती तो करीम पूरी कक्षा को अपन इशारो पर नचाता। उसकी मजाक की बातो पर कक्षा के बालक हसत और आनन्द उठाते। जब कभी वह अपनी हिम्मत की मनगढन्त कहानिया सुनाता था तब कुछ बालक तो उसकी बात पर विश्वास कर उसका लोहा मानत परन्तु कुछ बालक उसकी बातो को गप्प समझकर अपनी पढाई म लगे रहत। करीम की य बातें उनकी पढाई म रुकावट डाल रही हैं—यह बात भी साथी अनुभव करत थ। मनोज कभी-कभी उसे चुप रहने क लिए कह भी देता था और कभी-कभी उसकी बकवास को अनसुना

करने देता। करीम खेल के मैदान पर भी अपनी हुकड़ी जमाता रहता था। मनोज जैसे उसके वश में नहीं आते थे परन्तु उससे झगड़ा मोल नहीं लेना चाहते थे। ऐसे समय पर वे बहाना कर इधर उधर चले जाते थे।

मनोज अपना मन पढ़ाई में लगाए रखता था। वह मन से भी भोला था। वह चालाकी नहीं समझता था। करीम ने यह बात ताड़ ली। उसकी समझ में आ गया कि इस मुर्गे को वह कैसे वश में करेगा। 'हीरा हीरे को काटता है' वह जानता था। करीम ने देखा कि मनोज का मन पढ़ाई में खूब लगता था। करीम ने विचार किया कि मनोज को वह पढ़ाई के शस्त्र से ही वश में करेगा। उसने मनोज के साथ वाला डेस्क एक छात्र से खाली करवा लिया और उस पर स्वयं बैठने लगा। मनोज ने किसी से विरोध करना तो सीखा ही नहीं था। उसे करीम का उसके पास वाले डेस्क पर बैठना अटपटा लगा परन्तु उसने एतराज भी नहीं किया।

दो दिन के बाद करीम मनोज से बोला "मनोज भाई, मुझे इस गणित के प्रश्न का हल समझ नहीं आ रहा है। तुम इसका हल मुझे समझा दो।"

मनोज ने प्रसन्न होकर करीम को उस प्रश्न का हल विस्तार से समझा दिया। कुछ दिनों के पश्चात करीम ने अंग्रेजी के कुछ मुहावरों को समझने के लिए मनोज से विनय की।

अब लगभग प्रतिदिन ही करीम मनोज से कुछ न कुछ समझने के लिए आने लगा। मनोज और करीम का काफी समय साथ साथ व्यतीत होने लगा। एक-दो मित्रों ने मनोज को करीम से दूर रहने की सलाह दी और समझाया कि वह अच्छा लड़का नहीं है परन्तु मनोज ने हँसकर कहा—'करीम तो मुझे कोई भी बुरी बात नहीं सिखाता, वह मेरे पास पढ़ाई के लिए ही आता है।"

दिन क्रमशः बीतते गए। करीम और मनोज में घनिष्ठता बढ़ती गई। मनोज को करीम की गप्पबाजी में मजा आने लगा। वह हँस-हँसकर उसकी बातों पर आश्चर्य भी करता और आनन्द भी लेता।

एक दिन करीम ने स्कूल समय के बाद मनोज को चाट पकौड़ी की

दुकान पर रोका और बड़े स्नेह से बोला—"आओ, चाट खाएं।"

मनोज को इस समय भूख लग रही थी। उसने 'हां' कह दिया। फिर वह तुरन्त ही बोला—"चाट पकौड़ी के लिए मेरे पास इस समय तो पैसे नहीं हैं। कल ले आऊंगा। कल खाएंगे। अभी चलें। मम्मी भी इन्तजार कर रही होंगी। अच्छा करीम, चलूं।'

करीम ने मनोज का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और कहने लगा—'अरे भाई! आज तो मैं खिला रहा हूं। ये देखो, मेरे पास पैसे हैं।"

करीम ने जेब में से पांच रुपये का नोट निकालकर दिखाया। मनोज ने आश्चर्य से पूछा—"पांच रुपये? इतने सारे पैसे तुम्हें तुम्हारी मम्मी ने दिए हैं?"

करीम ने इस बात को न हां स्वीकारा और न ही अस्वीकार किया। चाटवाले को दो प्लेटें चाट की बनाकर देने को कहा। जितनी देर में मनोज ने विचार कर कुछ कहना चाहा, उतने समय में तो चाटवाले ने दो प्लेट तैयार कर उन दोनों के हाथों में थमा दीं। मनोज ने चाट खानी शुरू की। चाट स्वादिष्ट थी। मनोज ने चटखारे मारते हुए और करीम की तरफ हंसकर देखते हुए चाट खत्म कर ली। उसने चाट की तारीफ भी की।

करीम ने मनोज की पीठ पर धीमे से हाथ मारते हुए कहा—'अच्छा मनोज! अब घर चलें।'

चाटवाले ने करीम के पांच रुपये के नोट से एक रुपया वापस कर दिया। टाटा बाय-बाय करते हुए वे दोनों अपने-अपने घर की ओर चले गए। मनोज अपने घर आधा घंटा देर से पहुंचा था।

मां इन्तजार कर रही थी। वे बार-बार खिड़की में, रास्ते की ओर झांक जाती थीं। "आजकल ट्रैफिक बहुत बेकार हो गया है। इधर उधर देखकर तो चलाते ही नहीं। कोई गिरे मरे उनकी बला से। बस अंधाधुंध भाग दौड़। मनोज अभी तक घर नहीं आया। क्या करूं।' इसी प्रकार विचार कर रही थी कि बाहर दरवाजे पर लगी घंटी बजी।

मनोज को देखकर मा की जान म जान आयी। बलैंया लेकर उसका माथा चूमा।

'चलो, चलकर नाश्ता करो। इतनी देर कैसे हो गई ? क्या हो गया था ? जल्दी आया करो।" कहती हुई भीतर चली गई।

'यू ही बस, मा। मनोज कहता हुआ अन्दर आ गया। अपना बस्ता रखकर कपड़े आदि बदले। इतने मे ही मा की आवाज कानो मे पड़ी, "मन्नू बेट ! जल्दी आ जाओ। दूध गरम हो गया है।

मनोज सोचने लगा—पेट म तो चाट पकौड़ी है। दूध कैसे पीऊ ? पर मा पूछेगी कि दूध क्यो नही पी रह तो चाट की बात कहनी पडेगी। मनोज ने जाकर चुपचाप दूध पी लिया और एक बिस्कुट उठाकर बाहर लान पर चला गया। लान पर टहलते हुए सोचने लगा—'इसमे बुरी बात क्या है ? मित्र कुछ खिलाए और हम खा लें। हा ! पर पाच रुपये का नोट करीम कहा से लाया होगा ? इतने छोटे बच्चो को मा बाप स्कूल मे खर्चने के लिए अधिक से अधिक दो रुपये द सकते हैं। फिर ये करीम पाच रुपये ! पाच पाच रुपये ! बाप रे ! कही यह मा-बाप से छिपाकर, चोरी करके तो नही ले आया था ? नही, ऐसा हो तो नही सकता ! करीम मेरा दोस्त है। अच्छा है। मेरे साथ पढता है। कक्षा मे रौब डालता है तो क्या ! वह सबसे बडा भी तो है। फिर, इससे मुझे क्या ? चलू ! मनोज इन दलीलो के साथ-साथ कुछ घबराहट भी अनुभव कर रहा था।

भीतर जाकर मा को पुकारा— अरे मम्मी ! क्या कर रही हो ? मेरे लिए खाना मत बनाना। मेरा पेट कुछ गड़बड़ लग रहा है।"

मा रसोई मे काम कर रही थी। वह सरलता से बोली—"अच्छा। दवाई दे दूगी।"

छब्बीस जनवरी को गणतन्त्र दिवस के समारोह पर झण्डारोहण के पश्चात् स्कूल मे छुट्टी हो गई। करीम और मनोज हसते, बतियाते स्कूल कम्पाउण्ड से बाहर आ गए। स्कूल की बगल म ही एक आइसक्रीम की दुकान थी। वह आइसक्रीम स्वादिष्ट बनाता था। करीम ने मनोज को बढ़िया 'ढाई रुपये की एक' वाली आइसक्रीम खिलायी। मनोज ने

अपने मित्र करीम का धन्यवाद दिया और कहा कि आइसक्रीम बहुत अच्छी थी।

मनान के मन म एक बात बार-बार आने लगी और वह उसका सोच कर कुछ शमाने लगा था। उसको खयाल आता था कि करीम प्राय उसे कुछ न कुछ बढ़िया चीजें खिलाता रहता था। उसे भी करीम को कभी तो अच्छी-सी चीज खिलानी चाहिए।

उस दिन शनिवार था। सदा की भांति मा न मनोज को दोपहरी के लिए एक रुपया दिया। एक रुपया मनोज को कम लगा। उसके मांगने पर मा ने एक रुपया और दे दिया। मनोज झिझक रहा था। परन्तु सोच रहा था कि अधिक पैसा के लिए कहूं। एकदम झटके से बोला—'मा ! ये क्या ? एक एक रुपया दे रही हो, और दो ना। दो रुपय में आजकल कुछ नही आता।'

मा ने पूछा—'मन्नू बेटे ! इतने पैसो का क्या होगा ?"

वह धीरे से बोला—'मा ! बस यू ही।" मनोज की समझ उसे धिक्कार रही थी—"बच्चो को इतने पैसे नही खरचने चाहिए।" परन्तु मन यह दलील भी दे रहा था—"बच्चू ! करीम से कुछ न कुछ खाकर मजे लेते रहते हो। तुम उसे कभी कुछ नही खिलाओगे !' यह सोचकर मनोज को अपमान का अनुभव हुआ।

मा रसोईघर मे मनोज का टिफिन लेने चली गई। मनोज बस्ता उठाकर मा से टिफिन लेने रसोई म जाने लगा कि उसने देखा, मा का पर्स वहीं मेज पर पड़ा है। पर्स की चैन खुली हुई थी। पर्स म झांका तो दस दस के कई नोट दिखायी पड़े और उसी समय मनोज के मन मे करीम को कुछ न कुछ बढ़िया चीज खिलाने का विचार दौड आया। हाथ न आव देखा न ताव, पर्स मे से एक दस का नोट खिसकाया और अपनी एक किताब के अन्दर घुसा दिया। सीधा भाला-सा मुह बनाकर वह मां से टिफिन का डिब्बा लेकर घर स बाहर हो गया।

मनोज का दिल धडकने लगा। वह शर्म और भय का अनुभव कर रहा था। वह तर्क करने लगा—"मैंने यह क्या किया ? क्या मा को इस चोरी का पता लगने पर दुःख न होगा ?'

थी। उनके पास बैठकर कभी प्यार से उन्हें कुछ समझाया भी है। जब देखो बस डाटकर बोलना।"

पिता को यह सब अच्छा नहीं लगा। लडका बिगड रहा था और मा इस प्रकार पक्ष ले रही थी। परन्तु करते क्या? वे समझते थे य सब। पर रही उनका अपना गुस्सा भी कुछ कम नहीं था।

मनोज अब युवा हो चला था। राजनीतिक, सामाजिक, खेल कूद व अन्य अखबारी समाचार आदि सभी प्रकार की चर्चाएं उसे अच्छा लगती थी। ये सब मा के वश की नहीं थी। फिर मा का दृष्टिकोण भी तो ऐसा नहीं था। वे तो बच्चों के कपडे ठीक हैं या नहीं, रसोई की देख भाल आदि में व्यस्त रहती थी। मनोज को पिता के साथ बैठकर बातें करना अच्छा लगता था। परन्तु इस प्रकार के अवसर उसे बहुत ही कम मिलते थे, जब मिलते थे तो पिता कडक आवाज में किसी न किसी बात पर उसकी ही बेवकूफी बताते।

मनोज पन्द्रह वर्ष पूरे कर चुका था। उसका शारीरिक विकास उसे तंग करने लगा था। मूछों में छितरे बाल निकल आए थे। गालों पर छोटी-मोटी फुंसिया जब कभी निकलकर दर्द करने लगती थी। उसे मित्रों से मालूम हुआ था कि जब बालक युवा होने लगता है तब इसी प्रकार के 'पिम्पल्स' गालों पर निकल आते हैं। अब मनोज का चेहरा भोले शिशु का चेहरा नहीं रहा था। माता पिता जिस चाव से चेहरे पर स्वच्छ स्निग्ध चादनी की शीतल मधु-वर्षा की कल्पना करते थे, इसके विपरीत मनोज अपने उसी चेहरे से सूर्य की तपस को निकलते अनुभव कर रहा था। मनोज के मन की अकुलाहट छटपटाहट और बेचैनी उसके व्यवहार में नजर आने लगी थी। उसकी जरूरतें भी बढ रही थी। उसको अब सिगरेट पीने पिलाने के लिए होटल पर नाश्ते के साथ चाय पीने-पिलाने के लिए और सिनेमा देखने-दिखाने के लिए पैसों की जरूरत पडती ही रहती थी। 'आजकल की सोसायटी में इसान को यदि जीवित रहना है तो यह सब करना ही पडता है।' ऐसे विचार मनोज के मन में आने लगे थे।

संस्कृत के अध्यापक समझा रहे थे—

"मानव कभी-कभी जन्म से श्रेष्ठ, सभ्य सुसंस्कृत होते हुए भी अपने संस्कारों की आवाज नहीं सुनता है। अपने कर्तव्यों का ज्ञान रखते हुए भी उनका पालन नहीं करता है। इसी कारण मानव अपने वास्तविक सुख को भुलाकर दु:ख के सागर में गोते खाता रहता है।"

मनोज को इस भाषण से उबासी आने लगी। वह कक्षा से उठकर बाहर चला गया। करीम भी उसके पीछे पीछे बाहर आ गया। मनोज ने करीम से ताने के स्वर में कहा—"कहां रखा है सुख, यार !"

मनोज विचार तो जैसे खो ही बैठा था। वह ईर्ष्या, क्रोध, वासना जैसी कुभावनाओं का गुलाम बन पतन की ओर प्रवाहित हो रहा था। वह अपने दुर्गुणों में ही सुख और शान्ति को ढूंढने लगा। स्वयं तो अपनी अपरिपक्व बुद्धि से अपने मन पर काबू पा नहीं सकता था और दोष निकालता था मां-बाप के व्यवहार में। कहता था—'मां बाप को हमारी परवाह नहीं है।' यही विडम्बना थी मनोज के विचारों में।

दो फरवरी का दिन। मां को यह दिन सदा स्मरण रहता था। क्यों न याद रहे ? यह शुभ दिन मनोज का जन्मदिन था। मां सोच रही थी कि उसके लिए क्या बनायें ? हर्ष भरे स्वर में पति से बोली—"आज मनोज का जन्मदिन है। उसे क्या दें और खाने के लिए क्या क्या बनायें ? खाने में उसे मेरे हाथ की बनी खीर बहुत पसन्द है। वह गुलाब जामुन भी शौक से खाता है। मैंने दो किलो दूध ज्यादा ले लिया है। मैं खीर तो बना लूंगी आप बाजार से गुलाबजामुन लेते आना। आपको उसका नाप मालूम है न। उसके लिए एक बेल कढ़ा कुर्ता लेते आना। राजकुमार-सा लगता है वह ऐसे कुर्ते में।" मां कहती जा रही थी।

मां ने देखा कि पति की आंखें अखबार पर ही घूम रही थीं। उन्हें भ्रम हुआ कि वे उसकी बातें सुन भी रहे थे या नहीं। उन्होंने अखबार को हिलाते हुए कहा—"सुन रहे हो न ?"

पति ने झल्लाकर उत्तर दिया—"सब सुन रहा हूं। तुम अपनी कल्पना में मन ही मन खुश होती रहती हो। तनिक वास्तविकता पर भी ध्यान दिया करो।"

मां को बात कुछ अटपटी-सी लगी। उन्होंने पूछा—"क्या मतलब

है आपका ?"

'मतलब वतलब सब समझती हो तुम। भोली बनती हो। मूर्खता का बण्डल ! अपने मन के भावों का महल बनाकर उसकी सीढ़ियों पर ऊपर-नीचे चढ़ती उतरती रहती हो। पर कभी महल पर नजर तो डाली होती कि वह महल असली है या नहीं। असलियत से दूर मत भागो। आंखें और कान खोलकर इधर-उधर और आस पड़ोस की बातों पर ध्यान देकर ही काम करो।' पति ने ये सब बातें एक ही सांस में उत्तेजित स्वर में कह डालीं।

मां सहमी आवाज में प्रश्नवाचक दृष्टि से पति की ओर देखती हुई बोली—'हुआ भी कुछ, पता तो लगे ? या ऐसे ही पहेलियां बुझाते रहोगे ?'

अभी मां का वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि पिता चिल्ला उठे— तुम्हारे लाडले आज सुबह सुबह गए कहां हैं ? आज तो रविवार है। स्कूल कालजों की तो छुट्टी है।"

मां ने और भी नम्र स्वर करते हुए अनुमान से कहा— 'यहीं कहीं घूमने गया होगा। हो सकता है अपने दोस्तों को अपने जन्मदिन की दावत का न्यौता देने गया हो। अभी आ ही रहा होगा। उसने नाश्ता भी तो नहीं किया है अभी तक।'

"हां हां अभी आ जाएगा। फिर उसी से पूछकर जो वह कहे, बना लेना। जितना कहे बना लेना ठीक है।' पिता ने झुंझलाहट भरे भाव से अपना फैसला सुना दिया और वहां से उठकर जाने लगे।

मां ने उनकी कमीज का कफ पकड़ते हुए विनती की—'बैठकर बताओ तो ! ऐसे कैसे बोल रहे हो ?"

अब मनोज के पिता का धैर्य बांध टूट गया और क्रोधित होकर बोले— आज मेरी जेब से उसने दो सौ रुपये निकाले हैं। मैं अखबार पढ़ने के लिए अपना चश्मा निकालने गया था तब देखा—तीन नोट सौ सौ के पर्स से बाहर जेब में बिखरे पड़े हैं। झट से पर्स देखा तो पर्स खाली था। रात ही मैंने पर्स में पांच नोट सौ सौ के रखे थे। अभी पिंकू (राधिका) तो सो ही रही है। यह हजरत ही घर से गायब हैं। उसके

सिवा मेरे कोट से पैसा लेने की हिम्मत कर भी कौन सकता है ? समझी ? वह सब क्या और कैसे कह रहा था ?' इस अंतिम वाक्य को पिता ने प्रत्येक शब्द पर जोर दे दे कर कहा।

मा का सिर झुक गया और उनकी आखो मे आसू छलछला आए। कहते कुछ न बना। वहा से उठकर भीतर कमरे मे चली गई। चारपाई पर धम्म से बैठ गई। विचार प्रवाहित होने लगे—'हाय भगवान ! इतना नेक लडका था। इसको हो क्या गया है ? बचपन मे आज्ञाकारी और पढाई मे होशियार था। यह सब क्या हो रहा है ? अब वह कहा होगा ? किस दोस्त के यहा गया होगा ? क्या कर रहा होगा ?" रह रहकर मा का मन उद्वेलित हो उठता और रक्त प्रवाह को अधिक कर देता। मा अपने बिस्तर पर बैठी, ठुड्डी अपने घुटनो पर रखे दोनो बाहो से टागो को जकडे जा रही थी। न तो पेट जाये को बाहर फेंकते बनता था और न इन बुरी आदतो मे पडे मनोज को घर मे रखते बनता था।

जब व्यक्ति का वश नही चलता तो वह एक घायल पक्षी की भाति छटपटाता है। जिस प्रकार वह पक्षी अपने पखो को इधर-उधर पटकता है और कराहता है, ठीक इसी दशा मे मनोज की मा ने अपनी बाहो को बिस्तर पर इधर उधर पटका और सहारे के लिए चारो ओर ताकने लगी। पर निराशा-निराशा। शून्य शून्य। कमरे के भीतर, आसपास कोई नही था। मा ने मन ही मन बाहे फैला दी और प्रार्थना की—"भगवान् ! कृपा करो। मेरे मनोज को जहा कही भी हो, जिस किसी भी अवस्था मे हो, उसे घर की ओर आने की प्रेरणा दो।

'अरे ! कहा हो ? सुनती हो ! सुनती हो ! कुछ खाना वाना बनाया या नही। दोपहर के डेढ बज रहे है। राधिका बिटिया भी सहेली के घर से आ गयी है। जाओ, खाना खाए।" पति ने पत्नी को काफी समय से देखा नही था, इसी कारण ऊचे स्वर मे आवाज देते हुए बुलाया।

मा, जैसे अगाध समुद्र के तले से ऊपर झटके से आयी। तन थका—चूर चूर। मन थका—चूर चूर। चौंककर बिस्तर से उठी। 'अरे ! साढे दस बजे से मै यो ही बैठी रह गई हू। उठू।' अपने आपसे बोली।

पानी पिया और बाहर आकर बोली—"आधा खाना तो तैयार है। अभी लाती हूं। मनोज नहीं आया अभी तक।" अन्तिम वाक्य जैसे होठों में बुदबुदायी।

दिन बीता। सांझ ढली। दीया-बत्ती किया। भगवान की जोत जलाया। मनोज की वापसी के लिए कामना की। भोली मां का मन नरम मोमबत्ती की तरह जल भी रहा था—पिघल भी रहा था। सारा दिन न व किसी से बोलीं और न ही अपना दुःख किसी से कहा। कहती क्या ? पति तो झल्लाकर ही बोलते। मां का भी अब विश्वास हो चला था कि मनोज बिगड़ चुका है। उसी ने व दो सौ रुपये की चोरी की है। परन्तु साथ ही स्नेह सिक्त मां, बाल-बुद्धि की गलतियों का क्षमादान करते हुए दलील दे रही थी—वे भी तो ऐसा नहीं करते कि उसको अपने पास बैठाकर धैर्य से समझाए। जब बात करेंगे—बस आवाज कड़क। चेहरे पर त्योरियां। बताओ, अपने बच्चे से ऐसे किया जाता है क्या ? माना कि अधिक स्नेह, अधिक वात्सल्यपूर्ण भावनाएं सन्तान को बिगाड़ती हैं परन्तु अधिक कठोरतापूर्ण रवैया भी तो उन्हें विमुख करता है। ये कपूत ऐसा पैदा हुआ कि बस मेरे प्यार को समझता ही नहीं।'

मां ने सामने देखा तो देखती ही रह गई। मनोज बदहवास सा सामने बाहर के बरामदे में खड़ा था। सिर नीचे और निगाह ऊपर उठाकर देख रहा था। मां का ममत्व एक बार सब क्रोध भूलकर मनोज को गले लगाने के लिए लपका। दूसरे ही क्षण मनोज की करतूतों पर ध्यान गया और कठोर मुख-मुद्रा से चिल्ला पड़ी—"नालायक, बेवकूफ ! क्या मैं इसी दिन की आस लगाए बैठी थी ? मैं तुझे अपने हृदय का टुकड़ा, प्यारा भोला बच्चा समझ दुलारती रही और तू मेरी आंखों में धूल झोंकता रहा। क्या कमी थी तुझे ? फिर क्यों किया विश्वासघात ? तुम अब अपनी बुरी आदतों के गुलाम हो गए हो। ममता में मैं अंधी हो गई थी। तू कब बड़ा हो गया—मैं जान ही न पायी। मनोज ! बताओ, सच सच बताओ कि तुम कहां गए थे ?

मां ने मनोज से उत्तर पाने के लिए उसका कंधा पकड़कर झकझोरा। मनोज ने मां के हाथ को झटकार दिया और लगा जोर जोर से बोलने—

पिताजी तो मुझे बुरा समझते ही थे, अब तुम भी ! अब मैं इस घर में तो क्या, इस घर की देहरी पर भी नही आऊगा। मा ! मैं तुम्हारे लिए मर गया हू। तुम सब से तो मेरा दोस्त ही अच्छा है जो मुझे जली-कटी कभी नही सुनाता। सदा गले से लगाता है।" मनोज यह सब कहता तेज गति से घर से बाहर चला गया।

पिता कुछ न बोले और न मनोज को रोका। मा बाहे फैलाए दरवाजे की ओर लपकी। मा का मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। उनकी आखो के आगे अधकार छा गया। सभलने पर देखा तो मनोज जा चुका था।

हर दिन किवाड खडकने पर मा भ्रमित हो उठती जैसे कि मनोज आ गया। वे गहरे विचारो म डूब जाती थीं और सोचती—'यदि मनोज उस समय क्षमा माग लेता तो क्या वे उसे घर से निकाल देते। लेकिन वह तो दुर्व्यसनो और कुसगति के नशे मे चूर, यौवन के मद से अपनी मा की ममता को भी पहचान नही सका।

.वात्सल्य

कहते-कहते मटकता हुआ भोलू अपनी अम्मी के आँचल में छिपा जा रहा था। परन्तु रमेश आज भतीजे की मजाक पर प्रसन्न न हुआ वरन चिढ़कर बोला—"यही तमीज सिखायी है क्या भाभी, तुमने? कमाल है! पढ़ी लिखी हो, तब भी सभ्यता का नाम नहीं बच्चे में।"

जब से भोलू पैदा हुआ था तब से न मालूम रमेश को उससे चिढ़ सी क्यों थी! शायद अब भाभी, रमेश को पहले की भांति लाड प्यार नहीं कर पाती थी। भाभी को रमेश की बात पल्ले न पड़ी और वे भी बेटे के साथ खिलखिलाती हँसती रहीं। वे कह रही थीं— "चल हट, भोलू। तू बहुत शरीर हो गया है। इतने बड़े चाचा को ऐसे बोलता है। बुरी बात है।" और हँसती रहीं।

रमेश, कमल भाभी की इस प्रकार हँसी को देखकर और भी चिढ़ गया। वह तुरन्त मां के पास पहुंचा। रसोई के बाहर से ही पुकारकर बोला—"मां! तुम क्या नौकरानी हो जो सारा दिन चूल्हा चक्की करती हो और ये बहुएं बैठी-बैठी बातें बनाती रहती हैं। बच्चों को सिर पर चढ़ा रखा है। न छोटा देखता है, न बड़ा। जो मुंह में आया बकने लगता है। अब भोलू को देखो। मुझे क्या अनाप शनाप बक रहा है। आप भी कुछ नहीं कहती हो।

मां की कुछ समझ में नहीं आया।

रमेश ने फिर कहना शुरू किया—'मुझे आज न खाना खाना है, न कुछ।

माँ रसोई छोड़ तुरन्त बहू के पास पहुँची। वहाँ जाकर बोलीं—'क्या री! मेरे रमेश को क्या समझा है तू ने? क्या वह तेरे लाडले से जो कुछ कहलवाने के लिए ही तुझे इस घर में लाया था?"

भोली भाली कमल कलह की इस गम्भीरता को समझ नहीं पा रही थी। वह तो यही जानती थी कि वह इस घर में परायी बनकर नहीं रहती। यह उसका अपना ही घर है। इसके वासी उसके अपने ही है। परन्तु आज अचानक माँ जी का क्रोध देखकर वह आश्चर्यचकित तो हो ही रही थी, इसके साथ साथ उसके मनोभावों पर वज्रपात भी हुआ। सहसा आशा के विपरीत घटना से कमल का कंठ अवरुद्ध हो गया परन्तु पलकों का बाँध खुल गया। अश्रु अविरल धारा उसके हृदय को विदीर्ण कर फूट निकली। कमल बालक भोलू को एक ओर हटाकर माँजी के चरणों से लिपट गई। शब्दों का रास्ता उससे दूर हो गया था। स्वर में हिचकी थी। रोने के साथ केवल हिचकी थी।

सासुजी बहुओं को सदैव बेटियों की तरह प्यार करती आयी थी। वे आज तक कभी भी कोई अपशब्द या ऊँची आवाज में नहीं बोली थी। वे अब अपने किये पर स्वयं ही असमंजस में पड़ गई थी। बहू चरणों पर गिर कर रो रही थी। इससे सासु जी की अक्ल चकरा खाने लगी। वे सोच में पड़ गईं—'कहाँ वह रमेश जो भाभी के दुर्व्यवहार का हिमालय बता रहा था और कहाँ ये सुशील गाय सी कमल! सब कुछ सुन लेने पर तनिक सी भी धृष्टता नहीं वरन् चरणों पर लेटकर उनको आँसुओं से धो रही है।

सासु जी कुछ कह न पायी और चुपचाप उल्टे पाँव चली गई। सासु जी के कुछ न बोलने के कारण बहू कमल और भी घबराई। सोचने लगी—माँजी को भी आज क्या हो गया है। 'बेटी-बेटी, बहू बहू' कहते सुबह से शाम होती है। सारे घर में स्नेह ही स्नेह बिखरता है। फिर यह सब क्या हुआ? कैसे हुआ?

कमल दूसरे ही क्षण भोलू को गोद में उठाकर अपने कमरे में चली गई। माँजी ये सब रसोईघर में से देख रही थीं। परन्तु बेटे के प्रति

वात्सल्य ने उन्हें रोक दिया।

शाम हो गई। रमेश का बड़ा भाई महेश, भोलू के पापा दफ्तर से आने वाले थे। मांजी ने जोर से बहू को दरवाजे के बाहर से ही आवाज लगाई—"कमल, अब उठो। महेश आने वाला है। चाय-पानी देख!" यह मांजी का बहू को बुला लेने का एक बहाना ही था। 'टन-टन' करके घड़ी ने पांच बजाए। कमल ने घड़ी की ओर देखा। बिस्तर से उठी और हाथ मुंह धोकर बाल संवारे जिससे कि पति को दिन में हुई बात का अहसास न हो और उनके मन में ऐसा-वैसा ख्याल न आ जाए।

महेश प्रसन्नचित्त व्यक्ति था। वह जब भी दफ्तर से घर आता तब गाना गुनगुनाते हुए आता। कमल को, मां को भोलू को या रमेश को आवाज लगाते हुए ही प्रवेश करता था। महेश के जूतों की आवाज सीढ़ियों पर सुनाई दी और सुनाई दिया उसका पुकारना 'भोलू! ओ भोलू के बच्चे! कहां छिपा है! ठहर जा। अभी बताता हूं पाजी को।'

महेश जल्दी जल्दी जीना चढ़ रहा था। भोलू ने पापा का स्वर पहचाना। मां को छोड़कर भागा।

'पापा पापा भोलू का बच्चा नहीं, पापा का बच्चा हूं। अच्छा-सा बच्चा हूं। प्यारा सा बच्चा हूं।' कहता हुआ भोलू भागकर पापा के पास पहुंच गया।

पिता ने स्नेहवश भोलू को उठाकर माथे पर प्यार किया और झड़ी लगा दी प्यारों की। बाप बेटे में जैसे होड़ लगी थी कि इन प्यारों की गिनती में कौन किसको हराता है। भोलू की मां और मांजी भी खड़ी खड़ी मुस्करा रही थीं। मांजी ने झट से बहू को कलेजे से लगा लिया और गदगद हो उठीं। रमेश जो अभी तक एक ओर अपने कमरे के दरवाजे पर खड़ा पछता रहा था और अनुभव कर रहा था कि प्रातः उसका व्यवहार केवल भोलू से ईर्ष्या के कारण था, वह ईर्ष्या छोड़कर भाभी के चरणों से जा लिपटा।

चाय की मेज पर मांजी सहित सभी बैठे थे। आज वात्सल्य की कड़ियां और भी मजबूत हो गई थीं। परिवार के उपवन में मन्द शीतल पवन सुन्दर भाव-सुमनों से प्राप्त सुगन्ध चारों ओर फैला रही थी।

सहारा

छोटे पुत्र के जन्म को एक महीना हो चुका था परन्तु कमरे में पति के आने के लिए उनकी मां ने मना कर रखा था क्योंकि उनका कहना था कि इससे उनके लड़के की आयु घटती है। फिर सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना के दो शब्द तो निशा को कैसे सुनाई देते। हिरणी सी डरी आंखों से दरवाजे की ओर रह रहकर देखती रहती थी। बाहर आंगन से आती पति की आवाज को सुनकर मन ही मन प्रसन्न होती। जब कोई भीतर आता तो आहट पा जच्चा के कच्चे शरीर वाली निशा मुन्दी आंखों को खोल झट से उधर देखती। पति के स्थान पर ननद के कर्कश स्वर सुनकर निराश आंखें मूंदे चुप हो रहती। सोचती—'ये भी क्या—रीति रिवाज जिसके लिए इतनी दूर मां-बाप, भाई बहन सबको छोड़कर आई, उन्हीं को मिलने नहीं देते। क्या है ऐसा क्या?' निशा का मन रो उठता।

निशा के विश्वास का दीपक धीरे धीरे बुझने लगा था। बस, अन्धकार ही अन्धकार। मुर्दा जानवर की भांति पड़ी बुखार से जलती देह से सर्द आहें भरती। पास पड़े उबले अजवायन के पानी को एक घूट पीकर भूख और प्यास दोनों को शान्त करने का प्रयत्न करती। नाक तक पल्लू को लिए, दिल का दर्द किसी पर प्रकट न हो, इस प्रकार सोने का नाटक किया करती।

छोटा बहुत ही कमजोर था। निशा का तन भी सींक हो रहा था। न उसे खाने के लिए समय मिलता, न पीने के लिए। निशा ने अब अपने

मन के ससार को चन्द्रमा की सुखद चादनी से निखारने का स्वप्न भुला दिया था। अपने विचारो के सुनहरे पर्दो को हटाकर गालियो की बौछार का ही चारो ओर पर्दे मान लिये थे। अपनी मजबूर सिसकियो का मैली-कुचैली चादर ओढकर तकिये मे मुह ढककर दबा देती थी। किसी को उसके इस प्रकार रोने कराहने की भनक तक न मिलती थी। रात के दस ग्यारह बजे पति के आने का इन्तजार पहाड की चढाई सी मालूम होती। निशा की हिम्मत थी कि इतनी रात तक पति के आने की बाट जोहती ही रहती थी। आखें और विचार दोनो ही जड होने लगते थे। हृदय, वेदना से घायल अधमरा-सा मूक आवाज लगाता— प्रियतम, आओ। मेरे मन की व्यथा सुनो। मैं यहा पर आपके केवल आपके सहारे पडी हू।'

पति के दालान मे पदार्पण करते ही निशा के चेहरे पर एक स्मित रेखा उभरती। पति प्राय थका मादा घर लौटता। हाथ मुह धोकर, खाना खाकर शीघ्र ही सो जाता। कभी कभी पूछ भी लेता 'निशा, कैसी हो?

निशा को यह अति लघु वाक्य भी प्रेम भरी कहानी सा मालूम होता और वह चारो ओर छाये अधियारे मे मे तनिक दीप किरण की झलक से जीवन मे उजियाला अनुभव करती। परन्तु उसकी अश्रुपूर्ण आखो मे से वह किरण भीतर मन को प्रकाशित करे—यह अवसर निशा ने कभी नही पाया था। विवाहित जीवन का चित्र जो उसने बनाया था वह अब बेबसी, अभावो के पानी से घुलता जा रहा था।

निशा अब टूटने लगी थी। ये बच्चा जब से हुआ तब से निशा पर बिलकुल भी ध्यान न दिया जाता था। वे दोनो दिन पर दिन कमजोर होते जा रहे थे। निशा निराशापूर्ण वाक्यो मे कराहती। बैठी बैठी खो जाती थी। वह पति को खो देने के डर से, सर्वदा कोमल धीमे स्वर मे ही अपने मन की बात को अधूरी अधूरी सी कह पाती। दिन के लम्बे समय मे जब पति बाहर होता और सास तथा ननद के तानो मे मन घबरा उठता, तब वह कभी-कभी बेकाबू मन से व्यग्यात्मक वाक्य बोल जाती। बस, फिर क्या था। सास-ननद राक्षसी के रूप मे उस पर टूट पडती और मार-पीट तक उतर आती। निशा अपनी रक्षा के लिए चिल्ला

उठनी तो उसके मुह को जोर से बन्द कर दोनो उसकी चिल्लाहट को घर म दफन कर देती।

कहा है "जगल के पेड भी हवा के सहारे कधे स कधा मिलाते हैं और फिर सूय के प्रकाश पर चढकर परछाइयों के सहारे एक दूसरे के बीच की दूरी दूर करते हुए मिलते रहन का प्रयत्न करते हैं। पर तु समाज म रहन वाले ये लोग डाह, द्वेष, दभ, लोभ को सम्बल बनाकर अक्ल के तेज नाखूनो से फश को नोच नोचकर खाई खोदकर एक दूसरे से दूर हो जाते हैं।" इसी प्रकार का वातावरण निशा के ससुराल मे भी अपने डैने फलाये था।

वस त पचमी का दिन था। निशा सास के पास बैठी सब्जी काट रही थी। वह बोली—"आज के दिन, मम्मी पापा हमको नये कपडे सिलवा कर देते थे। हल्के बास ती रग के। स्कूल म लगभग सब ही बास ती रग के कपडे पहनते थे। इस दिन सरस्वती की पूजा की जाती थी।" बात साधारण थी। पर तु न जाने क्यो निशा की सास-ननद ने उसके मा-बाप, नाना-नानी, ताऊ ताई सबको बखानना शुरू कर दिया। लगी जोर-जोर से बोलने— 'बडी बखान रहा है मा-बाप का! क्या दिया तेरी मा ने? कहने को मा भी अफसर और बाप भी अफसर। एक मकान न सही, मकान के लिए जमीन ही दी होती।" और न जाने क्या-क्या कहकर निशा को चिढाती रही। उन्होने यह भी कहा कि निशा के मा बाप तो कगलो से भी गये बीते है। यद्यपि निशा के माता पिता ने पूरा पूरा दहेज; पलग पीढा सबके कपडे लत्ते बारातियो की पूरी खातिर, सभी कुछ तो किया था। अब तो वे कहने लगी कि वे अपने बेटे अर्थात निशा के पति की दूसरी शादी कर देंगे। निशा को बदचलन साबित कर उससे तलाक दिलवा देंगे।

अभी तक निशा बात को सुनती रही थी क्योकि उसकी समझ म नही आ रहा था कि वे दोनो ऐसी बातें क्या कह रही हैं। अन्तिम वाक्यो ने उसकी सहन शक्ति प्राय समाप्त कर दी और वह अपने मन-दुर्ग की दीवारो को तोडकर जोर से फफककर रो पडी। उसके सब्र का बाध टूट गया और शब्द प्रवाह वेग से प्रवाहित हो उठा।

वह बोली —"न तो इस घर स मुझे कोई कपडा मिलता है, न ठीक समय पर खाना मिलता है। सारा दिन काम म लगी रहती हू फिर भी

तानें, शिकायतें। मुझे कहो सो कहो मेरे देवता तुल्य माता पिता, बुजुर्गों को भी इस प्रकार भला-बुरा कहने का आपको क्या अधिकार है ?"

भला, इस प्रकार बहू का मुंह खुल जाए। सास, ननद यह कैसे सहन करती। बहू का इतना हौंसला बढ़ जाना उनके लिए असह्य हो गया। आव देखा न ताव। पकड़ लिया निशा को चोटी से। सास जी ने वाणी बाण छोड़—"हमें हमारे अधिकार बताती है? हमें अधिकार तू देगी, नीच! अभी बताती हूं तुझे।" दोनों—सास और ननद ने चिल्लाते हुए निशा को खींचते हुए कमरे में ला पटका।

आज न जाने निशा चुप न रह सकी। कब से दबा हुआ ज्वालामुखी फूट पड़ा। निशा ने घायल शेरनी जैसा क्रोधित रूप धारण कर लिया। उसका मन हुआ कि ऐसे लोग, जो हमारा सहारा बनने के बजाय समाज के लिए कलंक हैं उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने में ही समाज की और उस जैसी स्त्रियों की भलाई है। उसको आश्चर्य और कष्ट हो रहा था यह सोचकर कि औरत ही औरत का जीवन दुश्वार कर रही है। एक परायी लड़की को घर में लाकर उससे इस प्रकार एक नौकरानी से भी बदतर व्यवहार करती है। यह सरासर अत्याचार है।

निशा ने उसकी छाती पर रखा सास का पैर देखा और पर का जोर से झटक दिया। तत्काल उठी और उठकर सास को दूर धकेला। सास सम्भले कि सम्भले उसका सिर दरवाजे के कुण्डे से जा टकराया। निशा ने देखा कि सास जी के सिर से रक्त बह निकला है। निशा का मन रोने लगा जैसे उसने कोई महान पाप कर दिया हो। मरहम पट्टी के लिए कमरे में, दवाई लेने के लिए भागी। परन्तु ननद इधर घात लगाए थी। उसने लपककर निशा को पीछे से धोती में पकड़कर धक्का दिया। निशा गिर पड़ी।

यह कोहराम, रोना चिल्लाना, आस पड़ोस सब सुन रहे थे। एक पड़ोसन अपने भाई को लेकर उनके घर पहुंच गई। उसने देखा कि बाघ जैसे अपने पंजों में हिरण या बकरी को पकड़ लेता है वैसे ही सास और ननद ने निशा को अपनी पकड़ में जकड़ रखा था। ननद ने उसकी चोटी के बालों को पकड़कर पीछे की ओर खींच रखा था और सास उसका

चित्र

दीवार म धकेल कर गला घोटने के प्रयत्न म थी।

पडोसिन ऊची आवाज मे दहाडी— खबरदार ! अगर परायी लडकी की जान लो । हम गवाह बनकर आपको कोर्ट कचहरी से सजा दिलवा देंगे।"

"आप कौन होते हो हमारे घर म दखल दन वाले ?" ननद न निशा का गला छोडकर मुह चिढाते हुए कहा।

"हम सब कुछ हैं जी। आपको मालूम नही है कि हम बहू क पीहर के हैं। अभी तक हम चुप थे। परन्तु इन रोज रोज की ज्यादतियो को सहन नही कर सकत हैं। आप लोगो न हद कर रखी है। जब चाहे बच्चो पर चिल्लाना गुर्राना शुरू कर देते हो। क्या यह ठीक है ? हम कह रहे हैं कि इस नाजो पली लडकी का आप बहुत सताते हो और यह है कि सहती हो चली जा रही है।" पडोसिया न यह सब अधिकारपूर्ण स्वर म कहा।

पडोसियो क रवय का देखकर ननद और सास दोना अलग हो गई। पडोसिन न निशा को सम्भाला। निशा की काले-काल घेरा मे घिरी आखें सूनी राहो की भाति फैली थी। वे आखें गड्ढो मे धसी, आसुओ से धुधली हो रही थी। चेहरा उदास मुरझाये फूल जैसा था। पानी के अभाव मे जैसे धरती फट जाती है वैसे ही निशा क हाथ-पैर अधिक पानी मे काम करते रहन स फट रहे थे। दातुन-मजन की कमी स और अपौष्टिक खाने से उसके मसूढे सूजे हुए और पीले थे। तेल साबुन की कमी स बाल उलझ कर लटें बन रहे थे। कपडे मैल पुराने थे। निशा पडोसिन से छूटकर अपने कमरे म भागी और वहा जाकर गदी चादर स ढके बिस्तर पर तकिये म मुह छुपाकर औंधी गिर पडी। सुबक-सुबक कर रोन लगी।

अब तक निशा के पीछे-पीछे सभी उसके कमरे मे आ गए थे। बक-झक कर रहे थे। पडोसियो को भला-बुरा कह रहे थे। ऐसा लगता था कि जैसे भेडिए, जगल मे अच्छा-खासा उत्पात मचाते हैं परन्तु शेर की गर्जन सुनकर और शेर को सामने ही आया देखकर अपना गुर्राना चालू तो रखते हैं परन्तु धीरे धीरे। उसी प्रकार सास, ननद और देवर सब भुनभुना तो रहे थे पर धीमी आवाज मे।

पडोसिन न निशा के सिर पर हाथ फेरा और ढाढस बधाया कि वह

निर्भीक होकर रह। इसके साथ साथ उन्होंने यह भी समझाया—'बेटी! अपना कर्त्तव्य न भूलना। जो काम तुमको करने हैं वे सब पूरे करो। किसी ने सच ही कहा है कि हृदय बंधन ही सच्चा विवाह है। सिंदूर का टीका पल्लुओं का ग्रन्थि बंधन या भांवर फेरे—ये सब समाज के ढकोसले मात्र हैं। बेटी! उठ। हिम्मत से काम ले।'

निशा ने पड़ोसिन के शब्द सुने। उनकी सीख को भी सुना। निशा का रोना कुछ कम हुआ। सास, ननद और देवर एक एक करके वहां से खिसक गए। पड़ोसी अपने घर चले गए। निशा को लगा कि उसकी तो जैसे पूरी जान ही निकल गई थी। आधी जान पड़ोसी वापिस भीतर फूंक गए थे। परन्तु अभी भी वह चारपाई से उठकर काम सम्भालने में अपने आपको असमर्थ पा रही थी। वह ऐसी हो रही थी जैसे घुप्प अंधेरी कोठरी में जलता छोटा-सा लैंप बुझने ही वाला हो। वास्तव में हृदय एक फूल के समान है जिसकी पत्तियां धीमे धीमे पड़ती ओस की बूंदों को तो सहन कर लेती हैं परन्तु इस प्रकार कर्कश, क्रूर शब्दों की मूसलाधार तड़ातड़ पड़ती वर्षा से क्षत विक्षत हो बिखर जाती हैं। उसे तो अब पति की सहानुभूति पर भी सन्देह हो चला था क्योंकि सहारे के लिए डूबने वाला भी तभी चीत्कार करता है जब कोई सुनने वाला किनारे पर खड़ा दिखाई दे।

निशा का पति रात को ग्यारह-बारह बजे घर लौटा। मां और बहन कोप गृह में बैठी थी। उसके आते ही उसको बीच में बैठाकर झूठी बातें गढ़ गढ़कर बहू की असभ्यता का बखान करने लगी। पति के पूछ लेने पर कि 'बहू ने खाना वाना कुछ खाया या नहीं ?" जवाब तैयार था—"अरे! उसे इन रोटियों की क्या परवाह! अन्दर ही अन्दर न जाने क्या क्या खाती होगी। तभी तो नखरे दिखाती है।'

पति ने इस बात को काटा— नहीं! उसके पास तो पैसे भी नहीं हैं। वह बाहर तो जाती ही नहीं फिर क्या खाया होगा ?"

'अरे! तू तो भोला है। बच्ची रूपा ने तो आज मेरे पास बैठकर पूरी रोटी खायी है। छोटा कुछ खाने लायक है ही नहीं। बच्चों की चीजें जो तू ला-लाकर देता है वही खा लेती होगी। अब मैं समझ गयी!' मां ने ताना मारा। सिर का पल्लू सम्भालते हुए मटककर कहा।

रमेश निशा का पति, मा का मान रखने के खयाल से बिना कुछ उत्तर दिए वहा से उठकर अपने कमरे म चला गया।

निशा धीरे-धीरे बिस्तर मे उठने का प्रयत्न कर रही थी। रोने और मारपीट के कारण उसका हृदय फट ही नही गया, बस यही गनीमत हुई।

इतने म पति का उच्च स्वर कर्ण पटल पर चोट करता हुआ सुनाई पड़ा—"तुम घर मे सारा दिन हगामा क्या करती हो ? तुम्हें अपनी और हमारी इज्जत का बिल्कुल भी खयाल नही है ? क्या हुआ था आज ?"

थकान और दुख के कारण पिटा मा मन, पति की इस प्रकार की फटकार असहनीय होते हुए भी सहन कर रहा था। निशा बिस्तर से उठी और पति की ओर बनावटी मुसकराहट चेहरे पर लाकर देखने लगी। उसने कहा—"बैठो ना। हारे थके आए हो बैठो। मैं पानी वानी लाती हू। हा ! खाना खाया या नही।"

पति सुनकर बोला—"मुझे कुछ नही चाहिए तुम्हारे हाथ से। तुमने खाना क्यो नही खाया ? किस पर रौब छाटती हो ? हम किसी के रौब मे आने वाले नही हैं। यह अच्छी तरह समझ लो।"

निशा ने सारा दिन क्लेश सहा और अब जिसके सहारे जीने की आशा रखती थी और जिसके दर्शन की प्रतीक्षा मे लम्बा दुरूह दिन बिता दिया था, उसका वही पति, उसको डाट फटकार रहा था। अपने परिवार म पति सुखी रहे, यह सोचकर उसने कुछ भी उत्तर नही दिया और बाहर आगन मे आकर खडी रह गई। उसने देखा कि ससुर कमरे के पास एक ओर खड़े उनकी ये सब बातें सुन रहे थे। सिर पर पल्लू खीचकर निशा ऊपर छत पर जाने के लिए धीरे धीरे सीढिया चढ गई। ऊपर लगी रेलिंग के सहारे खडी तनहाई म सोचने लगी—

'वास्तव म यह ससार, जिसमे हम रहते हैं, वही यथार्थ ससार है। पग-पग पर खाई, पहाड और नदी जैसी रुकावटें खडी हैं। मेरा ससार तो केवल आशा कल्पना का स्वप्न बनकर ही रह गया है। इसे न पाकर भी मैं इसके अनुमान मात्र से ही सुखी होती रहती हू। मेरा भरसक प्रयत्न रहा है कि मैं किसी का कुछ कर पाऊ। इसी मे अपने जीवन की सार्थकता समझती रही हू। परन्तु हाय ! मेरा भाग्य ! मेरे सब प्रयत्न विफल ही

होत जा रहे हैं।"

निशा ने सिर का पल्लू धीरे धीरे हटाया जिसमे खुले आकाश के नीचे सास ले सके। आकाश मे चन्द्रमा विचरता नजर आया। चादनी म सामने धूल से ढकी सडक चमक रही थी। दूर मैदान मे एक बस्ती थी। वहा के लोग कच्ची-पक्की झोपडिया के बाहर बिछौने बिछाकर सो रहे थे। इस चादनी मे सब नजर आ रहा था। निशा को लगा—चादनी सुखद है, शीतल है फिर भी उसका शरीर जल रहा है।

निशा की आखें भर आयी और मुह से ठडी आह निकली। आसू कपोलो पर लुढक पडे। वह वही छत पर धप्प स बैठ गई। अपने मन म उठने तूफान को शान्त करने लगी। उसको ख्याल आया—'मैं भी ऐसा तूफान बनी हुई हू जो बधा हुआ है। मैं तो झरना भी एसा बन गई हू जिसकी धारा को बहना मना है। मैं मर जाना चाहती हू। इस धरती म समा जाना चाहती हू। परन्तु वह भी नही कर पा रही हू क्योकि आत्म-हत्या करने से समाज मुझे ही न जाने क्या-क्या कहेगा और य लोग उल्टे-सीधे अनुमान लगाकर मुझे बदनाम करेंगे।"

इन सब ऊच-नीचे विचारो के प्रवाह म निशा के आसू बहना भूल गए थे। अचानक पीठ के पास उसे किसी की उपस्थिति का आभास हुआ। वह चौंक गई। पीछे मुडकर देखा। पति उसके बिलकुल पास आ गए थ। इस एकान्त म राकेश ने अवसर पाकर पहले तो निशा के सिर पर हाथ फेरा। फिर उसका हाथ पकडकर उसको धरती से उठाया। अपने वक्ष के पास लाकर धीरे से बोला—'निशा, तुम मुझसे नाराज क्या हुई? न ही पानी पिलाया और न ही खाना खिलाया। तुम मेरी हो। मैं तुम्हारा हू। तुम जानती हो कि मैं सबसे बडी सन्तान होने के कारण इस परिवार के प्रति कर्त्तव्य निभाता हू। तुम बहुत भोली हो। मैंने कई बार तुम्हें समझाया है कि तुम इन लोगो को जवाब मत दिया करो। मा तो दहेज जैसी कुप्रथाओ से प्रभावित होकर असामाजिक व्यवहार करती है निशा - तुम तो पढ़ी लिखी हो। फिर समझदारी क्यों नही क

निशा इस प्रकार सहानुभूति पाकर पहले तो फिर फूटकर रो पडी। भारी आवाज म बोल उठी

पत्थर भी चोट खाते-खाते चूर चूर हो जाता है। तुम्हे तो मालूम है कि मैं अपने मा-बाप के यहा कितने लाड प्यार से पली हू फिर भी मैंने उस सारे लाड-प्यार को इस घर मे आकर एक ओर उठा रखा था।

'अभी मेरी हाथो की मेहदी छूटी भी नही थी कि मुझे भरे-पूरे घर के बर्तन माजने के लिए कहा गया। बर्तन माजना, अपने बच्चो के काम के साथ साथ खाना बनाना, सफाई आदि सभी काम तो भूखी-प्यासी करती हू। उस पर भी दिन रात तानाकशी! मीन-मेख! तुमको क्या सुनाऊ? तुम्हे तो समय ही नहीं। सुबह आठ, साढे आठ बजे चले जाना फिर इस समय रात को ग्यारह बारह बजे आना। तुम मेरी बात को सुनना भी नही चाहते हो। मैं इस समय कलह क्लेश की बातो को सुनाकर तुम्हारा मन भारी हो, यह भी नही चाहती। सासजी ने कहा था—आज की कोई बात अपने पति से कही तो मुझसे बुरा कोई न होगा। तेरी बात से वह सन्यासी बन जाएगा। घर छोडकर चला जाएगा। न जाने मैं इतनी यातनाए कैसे सह पायी हू। अब मुझसे नही सहा जाता है।'' निशा अपने पति को इस प्रकार अपने समीप एकाकी पाकर अपने मन की भडास निकाल रही थी। उसने लम्बा सास खीचा और फिर बोलने लगी— मैं तो एक छोटे से चमेली के फूल की सुगन्ध से ही सुखी हो जाती यदि वह फूल प्यार से दिया जाता।''

राकेश यह सब सुनता रहा। धीरे धीरे निशा को अपनी बाहो में जकडने लगा। पति ने अत्यन्त धीमे स्वर में स्नेहमिश्रित शब्दो मे कहा—''निशा! मुझे तुम्हारी कसम, अगर मैं तुम्हें अब कभी भी इस प्रकार अपमानित करने दू या मैं स्वय करू। मैं जब दुकान से आऊगा तब अपने कमरे मे बैठकर तुम्हारी बातें अवश्य ही सुनूगा। तुम सब बातें जीभर कर सुनाना। जो उचित बात होगी वही घर मे होगी।''

निशा ने कुछ प्रत्युत्तर नही दिया। निशा का सर पति के वक्ष पर सट गया। पति को लगा कि अब निशा सम्भल गई है। उसका मन शान्त हो गया है। निशा उसके शरीर पर कुछ भारी-सी लगी। पति के हाथो से छूटती, नीचे की ओर खिसक रही थी। राकेश ने निशा को सम्भालने की कोशिश की परन्तु निशा धम्म से पृथ्वी पर गिर पडी। राकेश ने उसके

हाथ की नाडी देखी। नाडी का आभास नहीं हुआ। दिल पर कान लगा कर देखा—दिल की धडकन लुप्त थी। निशा के दांत भिच गए थे।

राकेश का दिल घबरा गया। राकेश चिल्ला उठा—"मुझे छोडकर मत जाना।"

निशा प्रथम बार अपने पति की सहानुभूतिपूर्ण बातें सुनकर और उसकी अधिक समीपता का अचानक पाकर विह्वल हो उठी थी। इस अपार सुख का बोझ उसकी कोमल, कृश काया उठा नहीं सकी और इसीलिए ढह गई।

'किसी की नींद ऐसे खराब नहीं करनी चाहिए।' सोचते हुए उषा ने मन का सम्भाला।

वह उठी और उठकर स्नान किया। उषा तैयार होकर कुर्सी सरका कर उस पर बैठ गई। हाथ में अखबार लिया। एक दो खबरें पढ़ीं। कुछ ध्यान से पढ़ी और कुछ बेख्याली में। अचानक एक खबर पर उसकी दृष्टि रुक गई। कोटकपूरे में। करुणा बहिन के ससुराल में। महामारी फैल गयी थी। महामारी से कई व्यक्तियों की जानें भी चली गई थी। वह बहिन के परिवारजनों के लिए भयभीत हो उठी। उनका विचार आते ही वह फिर से अतीत की रेलगाड़ी में बैठकर यात्रा करने लगी। छुक छुक छुक छुक छुक। हृदयगति के साथ साथ उषा भी जैसे चलती चली जा रही थी। अधस्पष्ट धुंधले दृश्य उसके मानसिक नेत्रों के सामने से एक एक करके गुजरने लगे। दूर के दृश्य पास के दृश्य, ऊंचे ऊंचे पेड़, झुरमुट दिखाई दे रहे थे। वह रुक जाना चाहती थी। वह प्रयत्न कर रही थी कि इन विफल विचारों का ठहराव, यात्रा का स्टेशन आए।

मनुष्य को संसार के आकर्षण मृगमरीचिका की भांति अपनी ओर खींचते हैं। मानव अपने यौवन काल में इनके पीछे भागता है। परन्तु वास्तव में पानी के स्रोत को पाने के लिए सही दिशा में जाना आवश्यक होता है। यह विचार आते ही उषा ने मन अश्वों की लगाम को खींचा। वह उठी और उठकर सिलाई की मशीन पर जा बैठी। अपनी अधूरी सिली ब्लाउज़ को पूरा करने लगी। कबूतरों ने फिर वही आवाज़ की 'गुटर गूं, गुटर गूं'। वह फिर काम छोड़कर उस आवाज़ में खो गई।

इन कबूतरों की आवाज़ के साथ उषा के जीवन का गहरा सम्बन्ध रहा है। उसने खिड़की के दरवाजे खोल दिए। सोचा—इन कबूतरों को यहां से उड़ा दूं। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। खिड़की के खोलते ही सामने बाग में नाचता हुआ एक मोर दिखाई दिया। उसकी मस्ती देख उषा का मन भी झूम उठा, गा उठा। उसे याद आया—'अरुण'।

अरुण ने चौके में बिस्तर पर लेटे हुए आंखें खोली ही थी कि उन पर खड़ी उषा दिखाई दी थी। उषा ने दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया था। अरुण के भी दोनों हाथ अनायास ही जुड़ गए थे। जैसे उषा के

नमस्कार को स्वीकार किया हो। दोनों ही मुसकराए थे। उषा शर्माती हुई मुड़ी थी और चिड़िया की भांति फुदकती नीचे सीढ़ियों से उतर आई थी।

अरुण बाहर का व्यक्ति नहीं था वरन् उषा की बहिन करुणा का देवर ही था। करुणा जब शिमला जा रही थी, वह अम्बाले मां से मिलने चली आई थी। तब देवर भी उसके साथ आया था। इससे पहले भी जब उषा केवल पांच छ वर्ष की थी तब अरुण से अपनी बड़ी बहन के विवाह के अवसर पर मिली थी। इस समय उषा बालपन की सीमा लांघ चुकी थी। वह एक सुन्दर कन्या के रूप में उभर आई थी। उसका सुडौल शरीर, मीनाक्षी, सुर्ख लाल होंठ, कंधे तक कटे घने काले बाल, बालों में दोनों ओर लगे क्लिप एक युवती की आयु की देहरी पर पैर रखते बताते थे।

मां अपने वैधव्य के कारण इस बात के लिए सचेत थीं कि बच्चों में विशेष तौर पर बेटियों में जितनी योग्यता आए, वही अच्छा है। वह इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहती थी। पढ़ाई के साथ साथ घर के कामों में भी होशियार बना रही थी। उषा का मन अरुण के भोले, सांवरे चेहरे को देख कर न जाने क्यों उधर खिंचता सा जाता था। आते-जाते वह अरुण के पास आ जाती और कहती— 'पानी लाऊं।'' कभी बखानती—''यहां तो गर्मी बहुत है इधर कमरे में ही आ जाओ। आप तो शिमला जा रहे हैं वहां तो खूब ठंड होगी।'' इत्यादि।

अरुण छरहरा बदन, सफेद कुर्ता पायजामा पहने बैठा था। वह भी उषा के सामीप्य को पसन्द करता था। कभी उसकी बात पर हां' कह देता और कभी मना भी कर देता था। चाय नाश्ता परोसते समय उषा अपनी मुसकराहट इस तरह बिखेरती जैसे प्रातःकाल की उषा अपनी मद्धम, स्वच्छ समीर की लहरें। वह मुसकराहट अरुण के मन को पुलकायमान करती और वह भी आकर्षण अनुभव करता। वह मन ही मन उषा को अपने हृदय-दर्पण में प्रत्याच्छादित होते देखता था।

अरुण जब शिमला जा रहा था तब ही की तो बात है। वह गाड़ी में बैठ गया था। गाड़ी चलने में देर थी इसीलिए करुणा मां और उषा तीनों ही प्लेटफार्म पर खड़े बातें कर रही थी। मां ने पूछा—''करुणा, शिमला

'किसी की नींद ऐसे खराब नहीं करनी चाहिए।' सोचते हुए उषा ने मन को सम्भाला।

वह उठी और उठकर स्नान किया। उषा तैयार होकर कुर्सी सरका कर उस पर बैठ गई। हाथ में अखबार लिया। एक दो खबरें पढ़ीं। कुछ ध्यान से पढ़ी और कुछ बेख्याली में। अचानक एक खबर पर उसकी दृष्टि रुक गई। कोट कपूर में। करुणा बहिन के ससुराल में। महामारी फैल गयी थी। महामारी से कई व्यक्तियों की जानें भी चली गई थीं। वह बहिन के परिवारजनों के लिए भयभीत हो उठी। उनके विचार आते ही वह फिर से अतीत की रेलगाड़ी में बैठकर यात्रा करने लगी। छुक छुक छुक छुक छुक। हृदयगति के साथ साथ उषा भी उसे चलती चली जा रही थी। अधस्पष्ट धुंधले दृश्य उसके मानसिक नेत्रों के सामने से एक-एक करके गुजरने लगे। दूर के दृश्य पास के दृश्य ऊंचे ऊंचे पेड़, झुरमुट दिखाई दे रहे थे। वह रुक जाना चाहती थी। वह प्रयत्न कर रही थी कि इन विफल विचारों का ठहराव, यात्रा का स्टेशन आए।

मनुष्य को संसार के आकर्षण मृगमरीचिका की भांति अपनी ओर खींचते हैं। मानव अपने यौवन काल में इनके पीछे भागता है। परंतु वास्तव में पानी के स्रोत को पान के लिए सही दिशा में जाना आवश्यक होता है। यह विचार आते ही उषा ने मन अश्वों की लगाम का खींचा। वह उठी और उठकर सिलाई की मशीन पर जा बैठी। अपनी अधूरी सिली ब्लाउज को पूरा करने लगी। कबूतरों ने फिर वही आवाज की 'गुटर गूं, गुटर गूं'। वह फिर काम छोड़कर उस आवाज में खो गई।

इन कबूतरों की आवाज के साथ उषा के जीवन का गहरा सम्बन्ध रहा है। उसने खिड़की के दरवाजे खोल दिए। सोचा—इन कबूतरों को यहां से उड़ा दूं। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। खिड़की के खोलते ही सामने बाग में नाचता हुआ एक मोर दिखाई दिया। उसकी मस्ती देख उषा का मन भी झूम उठा, गा उठा। उसे याद आया—अरुण।

अरुण ने चौक में बिस्तर पर लेटे हुए आंखें खोली ही थीं कि छत पर खड़ी उषा दिखाई दी थी। उषा ने दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया था। अरुण के भी दोनों हाथ अनायास ही जुड़ गए थे। जब उषा के

नमस्कार को स्वीकार किया हो। दोनो ही मुसकराए थे। उषा शर्माती हुई मुडी थी और चिड़िया की भांति फुदकती नीचे सीढियो से उतर आई थी।

अरुण बाहर का व्यक्ति नहीं था वरन उषा की बहिन करुणा का देवर ही था। करुणा जब शिमला जा रही थी, वह अम्बाले मा से मिलने चली आई थी। तब देवर भी उसके साथ आया था। इससे पहले भी जब उषा केवल पाच छ वर्ष की थी तब अरुण से अपनी बडी बहन के विवाह के अवसर पर मिली थी। इस समय उषा बालपन की सीमा लाघ चुकी थी। वह एक सुन्दर कन्या के रूप मे उभर आई थी। उसका सुडौल शरीर, मीनाक्षी, सुर्ख लाल होठ, कधे तक कटे घने काले बाल, बालो मे दोनो ओर लगे क्लिप एक युवती की आयु की देहरी पर पैर रखते बताते थे।

मा अपने वैधव्य के कारण इस बात के लिए सचेत थी कि बच्चो मे विशेष तौर पर बेटियो मे जितनी योग्यता आए, वही अच्छा है। वह इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहती थी। पढ़ाई के साथ साथ घर के कामो मे भी होशियार बना रही थी। उषा का मन अरुण के भोले, सांवरे चेहरे को देख कर न जाने क्यो उधर खिचता-सा जाता था। आते-जाते वह अरुण के पास आ जाती और कहती— पानी लाऊं।" कभी बखानती—"यहा तो गर्मी बहुत है इधर कमरे में ही आ जाओ। आप तो शिमला जा रहे हैं वहां तो खूब ठंड होगी।" इत्यादि।

अरुण छरहरा बदन, सफेद कुर्ता पायजामा पहने बैठा था। वह भी उषा के सामीप्य को पसन्द करता था। कभी उसकी बात पर हां कह देता और कभी मना भी कर देता था। चाय-नाश्ता परोसते समय उषा अपनी मुसकराहट इस तरह बिखेरती जैसे प्रात काल की उषा अपनी मद्धम, स्वच्छ समीर की लहरें। वह मुसकराहट अरुण के मन को पुलकायमान करती और वह भी आकर्षण अनुभव करता। वह मन ही मन उषा को अपने हृदय-दर्पण म प्रत्याच्छादित होते देखता था।

अरुण जब शिमला जा रहा था तब ही की तो बात है। वह गाडी म बैठ गया था। गाडी चलने मे देर थी इसीलिए करुणा, मा और उषा तीनो ही प्लेटफार्म पर खडे बातें कर रही थी। मा ने पूछा—"करुणा, शिमला

पहुचते-पहुचते तो काफी ठण्ड हो जाएगी। गम कपडे बाहर रख लिये हैं या नहीं ?"

करुणा ने अपने हाथ मे पकडा कोट दिखाकर कहा था—"मा ! य है ना।" मा न फिर पूछा था—"अरुण के पास भी कोई काट-वोट है या नहीं ?"

करुणा ने लापरवाही से उत्तर दिया था—"इसके पास यह स्वैटर है काफी है।"

मा ने अपना शॉल उपा के हाथ में थमाते हुए कहा था—"अर ! इस स्वैटर मे शिमला की सर्दी रुकेगी क्या ? उपा, ये शाल उसे दे दे, नहीं तो यह बेचारा कुक्कड बन जाएगा, शिमला पहुचते-पहुचते।"

अरुण के बचपन मे ही उसके माता पिता, दोनो का ही साया उठ गया था। उपा की मां को वह 'ताईजी' कहा करता था और मा भी उसे बहुत प्यार करती थी।

उपा शॉल लेकर, जल्दी से रेलगाडी के डिब्बे मे चढ गई थी। अरुण को शिमला की अधिक ठड का अहसास करवाकर शॉल उसके हाथ म थमा दिया था। अरुण उपा के चेहरे को देख रहा था और उपा अरुण की आंखो मे। क्षण भर चुम्बकीय आकपण ने दोनो के मन को मिलन का अवसर दिया। उपा के पलको का चिलमन उठा तो उसने आखो क गुलाबी उजाले म कडक से अरुण की तसवीर उतार ली। उपा न आखें कसकर मूद ली थी उस समय मानो कि उपा न अरुण की तसवीर अपने नत्रो के पपोटा के प्रेम म जड लिया। उसे हृदय के सदूक मे बन्द कर लिया हो कि कोई इस तसवीर को चुरा न ले।

रेलगाडी के चलने के सकेत होने लगे थे। गाड के हरी झण्डी दिखान पर इजन की सीटी बज उठी थी। परन्तु वह सीटी अरुण और उपा के मन का नहीं सुहाई थी। उपा चौंकी। वह डिब्बे से नीचे उतर आई। करुणा जल्दी-जल्दी डिब्बे में चढ गई। रेलगाडी को अपन समय का ध्यान रखना था। वह किसी के मन का विचार करती रहे तो भला कहा पहुचे ? अत फक-फक करती रेल प्लटफाम छोडने लगी। अरुण खिडकी से बाहर मुह किए उपा को देखता रहा था। दोनो की नमस्त, नमस्त हुई। गाडी के

पहिये तेजी से दौड़न लगे। उषा के हृदय की धड़कन भी पहियो स हारना नही चाहती थी। अरुण अब धुधला धुधला दिखाई दे रहा था। उषा को लगा कि रेलगाडी अपन पहियो स इन पटरियो पर उसके मन की कहानी को अंकित कर रही थी। उसे लगा था कि यह अंकित अमिट है और प्रिय भी।

उषा मुडी और उसने पाया कि प्लेटफाम जो अभी खचाखच भरा था, प्राय खाली हो चुका था। यह तो प्लेटफाम का चरित्र ही है। अभी भरा और अभी खाली। उषा और मा, उदास मन से घर वापिस आ गई थी।

कई दिन बीते, माह बीते, फिर कई वष बीत गए। उषा बी० ए० की परीक्षा दे रही थी। लाहौर मे पढ़ रही थी। वहा पर होस्टल मे स्थान न होने के कारण किन्ही परिचित जन के घर पर ठहरी थी। उनक घर अधिक दिनो तक टिके रहना उचित नही था अतएव वहा से स्थानातरण करवाकर बहन करुणा के पास रहकर ही बी० ए० की पढाई करना निश्चित हुआ। वहा पर बालपन के साथी अरुण को पाकर उषा का मन हर्षित हो उठा।

वार्षिक परीक्षा का समय समीप ही था। उषा का मन पढाई मे व्यस्त था। अरुण भी उसी कमरे मे बैठा अपनी पढाई कर रहा था। मेघो के देवता इन्द्र व्योम विहारी मेघ माला पर सवार होकर इस नगरी के आकाश माग से गुजर रहे थे कि उनका मन वही पर अपनी कृपा बरसान का हुआ। टीनशेड पर पडती वर्षा की बूदो ने उन दोनो का ध्यान आकर्षित किया। दूसरे ही क्षण गरज के साथ टीनशेड पर तडातड पडती वर्षा की बूदो से अरुण और उषा के मन किसी अपूर्व भावना से सशंकित हो गए। अरुण अपने कमरे मे जाने को उठ खडा हुआ। उषा के मुह स अनायास ही निकला— 'अरुण यहीं सो जाओ।" अरुण को यह बात कुछ अटपटी सी लगी। वह नीचे सीढियो से उतरने लगा। दूसरी सीढी पर पैर रखते ही उसका पैर फिसल गया। 'धड धड धड धड' की आवाज से उषा धक सी रह गयी। उसने उठकर देखा तो अरुण सीढ़ियो से बिलकुल नीचे गिरा पडा था। वर्षा मे भीग रहा था। वह जल्दी-जल्दी सीढियो स नीचे उतरी और उसे सभालकर अपने कमरे म ले आई। उसे अपन बिस्तर पर

कुछ देर लेट जाने के लिए आग्रह किया। हाथ से पकड़कर उसको जैसे ही लिटाया कि वह उसकी ओर गिर पड़ी। उषा का मुह अरुण की ठुड्डी पर जा पड़ा। क्षण भर के लिए दोनों ही निस्तब्ध, अवाक् रह गए। न हिले, न डुले। मौन, नितात मौन ये दोनो ही। रात्रि के चौथे प्रहर उषा जैसे नींद से जागी। वह खिडकी के ऊपर बने टीनशेड पर चलत कबूतरो की गुटर गू की आवाज से घबरा उठी क्योकि यह आवाज प्रात काल होन का सकेत थी। उषा की घबराहट इस बात से भी थी कि बहिन करुणा इस घटना से दुखी ही होगी। परन्तु उषा के मन पर इस घटना न गहरा प्रभाव डाला। वह स्वय को अरुण के प्रति अनग बधन से बधी अनुभव करन लगी।

उषा, अगले दो तीन दिन तक अरुण के आसपास तो रहती परन्तु उसे अरुण की ओर देखन तथा उससे बातें करने मे शम आती। अरुण न एक दिन उषा का अपन वक्ष की ओर खीचकर पूछा था—'क्यो, बात क्यो नहीं करता है ?" क्रमश वे प्राय एक-दूसरे मे लीन कई-कई घटे बैठे रहते थे।

उषा बा० ए० की परीक्षा दकर मा के पास लौट आई थी। बी०एड० किया और एक नौकरी कर ली। उधर अरुण बी०एस-सी० करन के बाद एम०एस-सी० कर ही रहा था कि उसके बडे भाई न जो अमेरिका मे इजीनियर था उसे वहा पर बुलवा लिया। क्लीवलैंड मे ओहियो विश्व विद्यालय का नाम अच्छे विश्वविद्यालयो मे से था। वह वहो पर प्रवेश पाकर पढने लगा। उषा और अरुण मे पत्र-व्यवहार होता था। अरुण के विदेश जाने से पूर्व उषा का ध्यान उधर गया था। उसन सोचा था कि वह इतनी दूर जा रहा है, हो सकता है कि वह वहा जाकर उस भूल जाए। मा से उसन एक बार कहा भी— मा, अरुण विदेश इतनी दूर जा रहा है। उसे मिलन चलें। भगवान् जाने वह वहा कितन समय के लिए जा रहा है और फिर अपन भाई की तरह वह भी वही पर रह सकता है। मा, क्या वह मुझे । (फिर शर्माते हुए) हम वहा जाकर बिल्कुल भूल जाएगा। मा, मुझे तो ।" उषा कहते कहते रुक गई थी। मा ने उषा के चेहरे की लाज-भरी लाली को देखा था—कुछ समझा भी था। परन्तु उत्तर टाल सी गई।

समय बड़ा क्रूर होता है। वह मानव को बीते जीवन की मधुर स्मृति रूपी नारी के सामीप्य से जबरदस्ती दूर ले आता है। तीन वर्ष का समय अनचाहे ही व्यतीत हो गया। उषा अपने कामों में मन लगाये रखती थी। उसके रिश्तेदार उसकी मां से उषा की शादी कर देने की बात कई बार कह चुके थे। मां, उषा को कई बार विवाह कर लेने के लिए समझा चुकी थी। एक दिन जब उन्होंने उषा से इस विषय पर जोर देकर कहा तब वह उदास रुआंसी आवाज में बोली थी—"मां ! आप भी सब बात जानती हो फिर भी।"

मां को उषा का, अरुण के प्रति, जो आकर्षण था, वह स्मरण हो आया। वह धीरे से बोली—" क्या अरुण का ध्यान तेरे मन में अब भी है ! अरे ! वह तो अमेरिका जाकर वापिस क्या आएगा ?"

उषा ने प्रेम से उत्तर दिया—"मां, पिछले सोमवार अरुण का पत्र आया था। उसने अमेरिका में ही नौकरी करने का निर्णय किया है। परन्तु वह एक बार अपने सब रिश्तेदारों से मिलने यहां भारत आ रहा है। मां हमसे भी उसने वहां कोट कपूरा आने को लिखा है। मां, चलेंगे ना।"

मां की आंखें उषा के अन्तस्थल में उठी प्रसन्नता की लहरों को देख रही थी और देख रही थी लहरों को किनारों से मिल जाने की चाह का भाव। वह विधवा औरत, बच्चों से ऐसी बातें खुलकर करने में संकोच अनुभव करती थी। वह सोच रही थी कि उषा के साथ अरुण के विवाह की बात करने के लिए अपनी बेटी करुणा से कहेगी।

अरुण वापिस आ गया था। उषा भी अपनी मां के साथ कोट कपूरा उनके घर पर आयी थी। अरुण, अब कूपमंडूक भारतवासी बनकर जीना नहीं चाहता था। उषा की मां को मालूम हुआ कि वह अमेरिका में नासा जैसी संस्था में काम करेगा। वह अमेरिका की हवा खाकर धरती से आकाश की तरफ़ उड़ता नज़र आ रहा था। वह उषा से मिला परन्तु घनिष्ठ परिचित की भांति नहीं, केवल एक पूर्व परिचित की भांति। जितनी उत्सुकता और प्रसन्नता उषा के मन में अरुण से मिलने की थी, उतनी अरुण के व्यवहार में बिल्कुल भी नजर नहीं आई। मां और उषा दोनों को ही विवाह के प्रस्ताव पर, अरुण की ओर से स्वीकृति की आशा थी।

एक दिन अरुण के घर बहुत से रिश्तेदारों और देशी-विदेशी मित्रों की दावत थी। अरुण ने अपनी एक विदेशी मित्र मिस रोजी का उषा का परिचय बहुत ही सामान्य भाव से करवाया। उसने कहा— ये हमारी बचपन की दोस्त है।" वह वहीं से तत्काल आगे खिसक गया। दूसरी एक सुन्दर लड़की के साथ, जो शायद आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चासलर की पुत्री थी, उसकी बांह में बांह डालकर घूमता रहा। अरुण से बात करने पर मालूम हुआ था कि अरुण का विवाह उसी से होगा।

पुरुष अपने भावों को इतनी आसानी से बदल सकता है, यह उषा का मन विश्वास नहीं करता था परन्तु आज तो वह यह कटु-सत्य साक्षात ही देख रही थी। उषा और मां दूसरे दिन ही अपने घर लौट आयी।

दूसरे ही वर्ष अरुण की शादी का कार्ड पाकर, उषा धम्म से पृथ्वी पर बैठ गई। उसे संकेत मिल जाने पर भी आज लगा कि उसके ऊपर आसमान तो टूट ही रहा है नीचे की जमीन पाताल में धसती जा रही है। वह कह रही थी—"नहीं! नहीं! ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

उषा उठकर अपने कमरे में आकर लेट गयी थी। खिड़की के टीनशेड पर कबूतरों की वही 'गुटर गूं गुटर गूं' ने उसे झकझोर दिया था। वह फूट-फूटकर रोयी थी। रात देर तक करवटें बदलती रही थी। दो वर्ष बीत गए थे इस बात को भी। उषा ने अपने मन को अपनी पढ़ाई अपने व्यवसाय व अन्य कार्यों में लगाने के लिए बहुत से प्रबंध कर लिए थे क्योंकि तीर धनुष से निकल जाने के बाद वापिस तो आ नहीं सकता था। परंतु आज फिर इन कबूतरों के अतीत से जुड़े स्वर ने उषा को विचलित कर दिया था।

कोई-कोई दिन

एक सम्पन्न स्त्री ने कार चलाते समय सिर पर परात में आलू छोले उठाए एक व्यक्ति को टक्कर मार दी। बेचारा आलू-छोले वाला स्वयं तो गिरा सो गिरा उसकी जीविका की परात भी दूर जा गिरी। सब सामान मिट्टी से सन गया। व्यक्ति सम्भल कर उठा और मुड़कर पीछे देखा। उसने जब यह देखा कि कार चलाने वाली एक औरत है तब झुंझलाकर बोला—'मेम साहब! देखकर नहीं चलाती हो? अगर ठीक से चलानी नहीं आती तब पहले अच्छी तरह सीखो तभी सड़क पर कार को लेकर निकलो। यों गरीब मार तो मत करो। भगवान का शुक्र है कि मेरी जान बच गई। नहीं तो जान लेने में तुमने तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अब बताओ! शाम को मैं अपने घर क्या ले जाकर दूं। मेरे बच्चे और घर-वाली पैसों के लिए आस लगाए बैठे होंगे।"

इतनी देर में वहां पर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। भीड़ के लोगों ने कार चलाने वाली स्त्री को घेर लिया। वे आलू-छोले वाले की ओर से दलीलें पेश कर रहे थे। वे यह भी कह रहे थे कि मेम साहब आलू-छोले वाले को कुछ धन दे दें जिससे कि गरीब का नुकसान पूरा हो सके।

स्त्री ने कहा—'देखिए, इसको सड़क पर, बाजार में सम्भल कर चलना चाहिए। मुझे पन्द्रह वर्ष हो गए कार चलाते हुए अभी तक कभी भी गलती नहीं हुई।"

आलू छोलेवाला बड़बड़ कर बोला—'मैं भी 20 वर्ष से इन सड़कों

पर और बाजार में आलू-छोले बेचता रहा हूं। मुझसे भी कभी गलती नहीं हुई है।"

आलू छोलेवाले की बात को सुनकर कुछ व्यक्ति हंसे परन्तु कुछ बहस करने लगे कि स्त्री को कम से कम 200 रुपये देने होंगे।

इस हंगामे और झमेले से छुटकारा पाने के लिए स्त्री ने 200 रुपये अपने बटुए से निकाले और आलू छोलेवाले को दे दिए। "हटो। अब तो हटो।" कहती अपना रास्ता बनाती वह घर की ओर चली। स्त्री का नाम मंजु था।

मंजु को इस घटना ने बहुत ही विचलित कर दिया। उसने आज एक पोर्ट्रेट बनाने का इरादा किया था। उसके लिए ही बाजार से सामान लाने के लिए उस बाजार में गई थी। 200 रुपये उस व्यक्ति को देने के बाद अब उसके बटुए में काफी रुपये नहीं बचे थे जिससे वह सामान खरीद सकती और न ही उसका मन अब उस बाजार में रुकने को था। इसी कारण वह सीधी घर की ओर चल दी। विचारों में मंजु इस प्रकार डूब गई थी कि बंगले के गेट पर ताला लगा होने पर भी, जिसे वह स्वयं ही लगाकर गई थी, हॉर्न पर हॉर्न दिए जा रही थी। घर पर तो इस समय कोई भी नहीं था। कौन ताला खोलता। पति आफिस गए हुए थे। बच्चा जो पांच वर्ष का था उसे वह स्वयं ही तो अभी-अभी स्कूल छोड़कर आई थी। दूसरे ही क्षण मंजु को इस बात का ध्यान आ गया। वह जैसे नींद से जागी और हंसी।

मंजु ने कार से उतरकर ताला खोला, गेट खोला और कार को भीतर ले जाकर उस पोर्च में खड़ा कर दिया। भीतर आकर पानी पीया और कुर्सी पर बैठ गई। पास ही पड़ी 'धर्मयुग' पत्रिका को लेकर पलटने लगी। कार्टून वाला—डब्बू जी का पृष्ठ खुल गया था। डब्बू जी भी आज किसी कार से टकराये हुए दिखाये गये थे। मंजु पहले सा खूब हंसी। फिर अपने आप से बोल उठी—"यह डब्बू जी भी होंगे कोई पचास वर्ष के। टक्कर में इनकी गलती का तो सवाल हो ही नहीं सकता। मैं हॉर्न देती रही थी फिर भी—चलो छोड़ो इस झगड़े को।"

मंजु को याद आया कि उसे तो अभी खाना भी बनाना था। स्कूल से

अपने बच्चे को और उसके बाद पति का भी आफिस से लंच के लिए लेने जाना था।

कार को अत्यन्त सावधानी से चलाने की बात विचारते विचारते वह रसोई घर में पहुंच गई। भिंडियों को पानी से धोकर सूखने रख दिया। उड़द की दाल से कंकड़ छानबीन कर, उसे धोकर प्रेशर कुकर में नमक, हल्दी डालकर गैस के चूल्हे पर चढ़ा दिया। आटा गूंधकर रख दिया। नीचे झुककर टंकी के नल को खोलकर हाथ धो रही थी। हाथों से आटा हटाने के लिए उन्हें मलने लगी कि एकाएक चीख मारकर एक ओर को कूद पड़ी। दिल तेजी से धड़कने लगा। हाथ पैरों में कंपकंपी छूट गई थी। धोती को सम्भालकर इधर-उधर देखा तो एक छिपकली रानी उसकी पीठ पर से नीचे छलांग लगाकर आटे के पीपे के पीछे छुपने के लिए तेज चाल से चल रही थी। मंजु को बहुत ही बुरा लगा। किसको यह बात सुनाकर दिल का धैर्य बंधाती। सीधे खड़े होकर तौलिए से हाथ पोंछे। आटे की परात को एक छोटी थाली से ढका। भिंडियां सूख गयी थीं। उन्हें काटने के लिए चाकू उठाया। आज छोलेवाले की बात उसके मन को बार-बार तंग कर रही थी। उन्हीं विचारों से घिरी वह भिंडियों की टोपियां एक-एक करके काटने लगी।

मंजु एकदम घबराकर कुर्सी पर से उचककर, कुर्सी से दो कदम पीछे खड़ी हो गई। दूसरे क्षण ही मंजु होश में आ गयी। उसकी समझ में आ गया कि जब वह अपने विचारों में डूबी भिंडियों को खट खट काट रही थी, तब ही प्रेशर कुकर की सीटी बज उठी थी। उससे मंजु रानी को ऐसा आभास हो गया था कि वह किसी रेलवे स्टेशन पर खड़ी थी और रेलगाड़ी खटाखट करती उसी की तरफ बढ़ी आ रही थी। उसके सामने पहुंचते ही रेलगाड़ी ने जोर से सीटी दी। प्रेशर-कुकर की सीटी को रेलगाड़ी की सीटी समझकर, चौंककर पीछे हट गई थी।

अब मंजु को अपने आप पर क्रोध आने लगा था— इस प्रकार वह अपना मानसिक संतुलन क्यों खो रही है ?"

उसने विचारा, उसने स्क्वैश की बोतल अलमारी से निकाली। गिलास में कुछ स्क्वैश डालकर पानी और बर्फ़ मिलाकर गटागट पी गयी।

इससे तसल्ली नहीं हुई तो एक और गिलास बनाया। जल्दी-जल्दी उसको भी पी गयी। स्ववेश ठंडा होने के कारण उसकी आंखों और दिमाग में तरावट आ गयी। हृदय कुछ शान्त हुआ, दाल वाला प्रेशर कुकर गैस से नीचे उतारा। भिंडिया छौंकी और गैस के दूसरे चूल्हे पर चपातियां सेंक ली। रसोई का काम पूरा होते होते दोपहर के साढ़े बारह बज गए थे।

मंजु ने बाहर आकर पसीना सुखाया। हाथ मुंह धोकर कपड़े बदले, घर में ताला लगाया और कार को गेट से बाहर निकालकर ले गयी। पहले बेटे बंटी को स्कूल से लिया फिर पति को आफिस से। वह इस समय कार धीरे धीरे चला रही थी। पति, हरिराज को अटपटा सा लगा, क्योंकि मंजु ने पहले कभी कार को इतने धीरे नहीं चलाया था। हरिराज ने यह अनुभव किया कि मंजु कुछ अनमनी सी भी थी। वह प्रतिदिन की भांति आज बंटी से उसके स्कूल में होने वाली किसी बात को पूछ भी नहीं रही थी।

पति ने इस मौनव्रत को तोड़ा और पूछा—"मंजु, बाजार से कुछ खरीदना तो नहीं है?"

मंजु ने वाक्य खत्म होते ही झट से उत्तर दिया—"नहीं।" और फिर चुप हो गई। बंटी अपनी नर्सरी राइम (बाल कविता) गा रहा था। पीछे की सीट पर इधर उधर होकर मटक रहा था।

अनमने मन वाली मंजु को बालक की यह सहज क्रीड़ा भी सही नहीं लगी। डांटकर कहने लगी—"क्यों बंदर की तरह उछल-कूद कर रहे हो? बैठ जाओ। पीछे का कुछ दिखाई नहीं देता।'

दूसरे ही क्षण ख्याल हुआ—बालक पर बिगड़ने से क्या लाभ? उसका तो कुछ अपराध नहीं। वह मृदुलता से बोली—"बंटी, गाओ अपना गाना।"

'आप कोई बात क्या नहीं कर रहे हैं।" यह पति से बोली।

मंजु ने वाक्य खत्म किया ही था कि घर आ गया। गेट खुला ही छोड़ गयी थी। सर्राटे से मोटर कार अन्दर दौड़ाती हुई उसे पोर्च में ला खड़ा किया। मोटर का दरवाजा खोलकर उतरी और फिर बन्द कर दिया।

बिन्दु

शीघ्रता से घर के भीतर जाने वाली सीढ़ियों पर चढ़ गयी। पीछे हाथ हिलाकर कहती गयी—"आओ! आओ! खाना तैयार है।"

पापा और बेटा आज मम्मी का यह 'मूड' देखकर हैरान थे परन्तु इसका कारण उनकी समझ में नहीं आ रहा था। पापा कार से नीचे उतरे और बंटी को भी उतारा। पापा ने घर का लॉन देखा और बोले—"अरे, गेट खुला था न इसलिए शायद पीछे से माली ने आकर बढ़ी हुई घास काट दी है।"

बंटी इस समय दूसरी ओर का लॉन देख रहा था। घबराकर जल्दी-जल्दी बच्चों की तरह बोला—"पापा-पापा! गधा।"

पापा को गुस्सा आया। तुरन्त बोले—"क्या बकता है? पापा को ऐसे बोलते हैं?" यह कहते-कहते उधर बंटी की ओर देखा। वह झट से बोले—"सच, बंटी! गधा है।"

इतने में मंजु जो भीतर से उन्हें खाना खाने के लिए बुलाने बरामदे में आ गयी थी, उसने भी देखा कि दो गधे आराम से लॉन पर घास चर रहे हैं। प्रायः चिल्लाकर बोली—"अरे! देखो लॉन पर दो दो गधे हैं।"

पापा और बंटी दोनों हँस रहे थे परन्तु मंजु केवल मुसकरायी।

फिर गम्भीर हो गई क्योंकि उसकी समझ में आ गया था कि यह सब उसी की लापरवाही के कारण हुआ है। वह बाहर का गेट खुला ही छोड़ गयी थी। इसीलिए गधों ने आकर आराम से खिले फूलों से भरी क्यारियों तक को अपने पैरों से कुचल डाला था। वह आज सुबह से ही अपनी करनी पर झुंझला रही थी। उसे अपनी बेवकूफी की बातों पर पश्चात्ताप भी हो रहा था। पतिदेव ने दोनों गधों को खदेड़कर गेट से बाहर किया और फाटक बन्द किए। उन्होंने सोच लिया था कि अभी मंजु से इस विषय पर कुछ भी बात नहीं करेंगे। इसीलिए वे चुपचाप भीतर चले गए।

सबने खाना खाया। वातावरण बहुत खराब नहीं था। खाना खाकर मंजु कार में पति को आफिस छोड़ आयी। वापिस आकर बंटी को होम-वर्क करने के लिए बैठाया। मंजु एक ब्लाउज के 'हुक' लगाने व हुक के लिए 'आई' बनाने के लिए बंटी के पास बैठ गई। बंटी काम करता रहा। बीच-बीच में मंजु उसे 'गाइड' करती रही। बंटी का काम खत्म

हुआ तब मजु ने खिड़कियों पर पर्दे खींच दिए और कमरे मे अधेरा करके वह बटी के साथ ही आराम करने के लिए बिस्तर पर लेट गई। कुछ ही देर म बटी मा की बगल मे मुह करके सो गया। आज मजु क तन और मन दानो ही थके हुए थ। सुबह से जा जो उल्टी सीधी बातें हुई थी उनको वह भूल जाना चाहती थी।

वह कुछ देर आराम स सोना चाहती थी। फिर मजु को ध्यान आन लगा — कब से इस पोर्ट्रेट को बनाने के लिए सामान लाने की सोच रही थी। आज पूरे इरादे से निकली थी परन्त आज यह दखो न ! क्या झमेला हो गया था। आलू-छोलेवाला। ओह? चलो छोड़ो य सब और सो जाऊ। मजु ने करवट लेकर जोर से आखें मूद लीं। नीद लेने की पूरी कोशिश की, वह सारे दिन की गडगडाहट को भूलकर चैन से सोना चाहती थी। कुछ मस्तिष्क मे चैन आई थी कि कालबेल की आवाज मे मजु हडबडाकर उठी और घडी की तरफ देखा। अरे ! एक घण्टा हो गया सोते सोते परन्तु अभी तो साढे चार ही बजे हैं। बाहर कौन आया होगा ?' उसने जाकर दरवाजा खोला।

"ओ दीदी ! आप ! आइए। बहुत दिनो मे आई !" मजु ने कहा ननद बाईजी की पुत्री 'सुपना' जो सात आठ वष की थी, अपनी बच्चा की भाषा म बताने लगी—' मामी जी। हमारी टण्डन आटी भी साथ आई हैं। उनके दानो बच्चे—मीना और टीनू भी आए हैं। वे हमारे घर आय थे। मम्मी हमे और उन्हे लेकर आपके घर आई हैं। हम सब यही खेलेंगे। मामी बटी सो रहा है क्या ?''

नमस्ते आदि के पश्चात सबने ड्राइगरूम मे प्रवेश किया। मजु ने सबको सादर बैठाया। बच्चे इधर-उधर भाग दौड़ करने लगे। जूता समेत कभी सोफे पर कूदते, कभी रेडियो, टी०वी० को छेडते। साइड टबल पर पडी ऐश ट्रे को उठाकर टेबल पर बजाते। एक अच्छा खासा शोर-गुल मच गया। इस शोर-गुल से बटी भी जाग गया और रोता रोता मम्मी को ढूढता वहीं पर आ पहुचा। मजु ने बटी को गोद म लिया और भीतर जाकर ट्रे मे पानी के गिलास जमाए। ननद को आवाज लगाई। आशा के भीतर आने पर पूछा—"आशा दीदी, ये आपकी कौन सी सहेली

हैं ? मैंने तो इन्हें पहले कभी नहीं देखा है।"

"मंजु ! यह कॉलेज में मेरे साथ थी। आज अचानक बच्चों के साथ हमारे घर पर आ गई। मैंने सोचा कि तुम्हारा घर पड़ता है। यहीं पर आ जाते हैं। एक पंथ दो काज। मिलना भी हो जाएगा तुम लोगों से और फिर इसकी खातिर भी। मंजु, चाय-वाय बनाई या नहीं ? नाश्ता तैयार है या फिर कुछ बना लें ?" ननद बाई जी बेतकल्लुफी से कहती चली जा रही थीं।

मंजु की तो अक्ल फेल हो रही थी और दीदी थीं कि मेहमानों के मेहमानों की भी खातिर करवाने में लगी थीं। क्या करे क्या न करे। पानी की तरफ इशारा किया और कहा—"दीदी, आप उन्हें पानी तो पिलाइए। तब तक मैं बेटी को दूध पिलाकर बाहर आती हूं। इस समय सवा पांच बज रहे हैं। उन्हें भी आफिस से लाना है।"

आशा के तो मन की बात हो गई। "ठीक है, मंजु ! तू हरि भैया को लेने जा रही है तो रास्ते में से अच्छा-सा नाश्ता भी लेती आना। मिसिज टण्डन के बच्चे काफी भूखे होंगे क्योंकि हम लोग दो घण्टे तक शॉपिंग करके आ रहे हैं।" आशा ने बताया।

मंजु असमंजस में थी कि इस प्रकार निस्संकोची व्यक्ति भी संसार में होते हैं। माल न माल मैं तेरा मेहमान। करती क्या ! मुंह खोलकर आशा को कैसे कह देती। परन्तु मन ही मन कह रही थी—"दीदी, आप भी कमाल हैं। भला आप तो आयीं सो आयीं साथ में अपनी इस अजनबी सहेली का बच्चों समेत लाने की क्या तुक थी।"

मंजु 'अच्छा' कहकर पतिदेव को लेने चली गई।

वह आज के दिन को कोसने लगी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उस दिन सुबह-सुबह किसका मुंह देखा था जो सारा दिन ऐसा निकला। जो काम, पोर्ट्रेट बनाने का वह पिछले कई दिनों से सोच रही थी किस प्रकार सब गडबड हो गया। रास्ते में रुआंसी आवाज में हरिराज को सब घटनाएं सुनाईं।

हरिराज मुसकराकर बातें सुनते रहे फिर सान्त्वना देते हुए बोले—"अरे ! कोई-कोई दिन ऐसे ही व्यर्थ जाता है। गडबड होती चली जाती है।"

मोड

सर्रर्र तेज आती मोटर कार—एकाएक चू ऊ ऊ ऊ करती हुई एक बड़े बैंक के सामने रुकी। कार के दरवाजे को खोलते हुए आंखों पर धूप का चश्मा चढ़ाए उस कार में से शोभना उतरी। वह देख रही थी केवल बैंक की ओर। वह कुछ जल्दी में थी शायद। दरवाजे के खुलने और उससे उतरकर दरवाजे की ओर मुड़कर उसे बन्द करने में लगा होगा केवल एक सैकण्ड। उसने कदम बैंक की ओर बढ़ाया ही था कि वह पीछे से आती एक अधेड़ उम्र की महिला से टकरा गई। थक जाना तो भूल गई और लगी जोर-जोर से भला-बुरा कहने—"देखकर नहीं चलती।

साड़ी को रूमाल से झाड़ते हुए बोली—"गन्दी कहीं की। चल हट। जा अपने रास्ते।'

महिला अपने फूटे भाग्य को तो भूल गई। वह असमंजस में पड़ गई। उसके मस्तिष्क की आंखों के सामने घूम गये कालेज के कमरे, कालेज के खेल का मैदान। प्रतियोगिताओं में वह सदा शोभना को हराती थी। स्मृति चित्र उस महिला—शीला के सामने रेलगाड़ी के डिब्बों की भांति शीघ्रता से घूम गये। कुछ धुंधले कुछ स्पष्ट। चेहरे पर आश्चर्य, दुःख और बिछुड़ों से मिलने का सुख, इन सब मिश्रित भावों को शीला दबा न पायी और हाथ की उंगलियों को होंठों पर रखते हुए अनायास बोल ही तो पड़ी— अरे शोभना! तू है?"

शोभना के पाव आगे बढ़ना चाहते हुए भी ठिठककर रह गय। उसन औरत को घूरकर पूछा—' कौन है तू ? मेरा नाम कसे जानती है ? जल्दी बता। मरा समय क्यो खराब कर रही है ?"

शीला क दो मन हुए। एक तो यह कि शोभना से वह चिपट जाए। सब अपनी बीती बता दे कि वह चौबीस घण्टो म से लगभग अठारह घट उसके साथ ही व्यतीत करती थी। वह उसकी पडोसन थी। एक ही कॉलेज, एक ही कक्षा की सहेलिया थी वे। परन्तु अभी-अभी जो व्यवहार उसन र्‍प्थ हुआ था, यद्यपि इसम शीला का दोष अधिक नजर नही आया तब भी शका, डर और अपनी दशा क बोध ने उसे ऐसा करने से रोका। सतप्त हृदय से निकले गम आसुओ को शीला न अपनी मैली धोती का पल्लू लेकर उसमे समाला। वह मुडी और मुडकर आगे बढी।

शोभना का अन्तर भी विचलित हो उठा था। उसन कदम बढ़ाती हुई औरत को कधे से पकडकर झकझोरा। नम पर दृढ शब्दो मे उसे उसका परिचय देने के लिए बाध्य किया। जैसे ही औरत ने अपन नत्र पोछकर शोभना की ओर देखा वैसे ही शोभना ने भी अपन मस्तिष्क के परिचय-पत्रो की ओर आभ्यन्तरिक दृष्टि की। उसको अपन साथ पढी, खेली हुई शीला की मूर्ति को पहचानन मे पल भी न लगा। शोभना अपन अस्तित्व को भूल गई और लिपट गई शीला से। आश्चय और दुख के मिश्रित स्वर मे बोली—"शीला ! ओ शीला ! तू ऐसे ? क्यो ? ये सब क्या है ? तू ता मेरी सबसे अच्छी सहेली—मेरी बहिन है।'

आने-जाने वाले लोगो ने भाग्य के दो विपरीत रूपो का—आकाश और पथ्वी को क्षितिज पर मिलने की भाति, गले लगते देखा। उन्होन नदी के दो कूल एक दूसरे के इतने समीप आश्चयचकित होकर देखे। समाज के ऊच नीच भाव को मिटते हुए और अमीरी गरीबी को एक स्थान पर इस प्रकार प्रेम भाव से मिलते देखकर उन्हे प्रसन्नता ही हुई होगी। दोनो के लिए वे लोग अनुमान के आधार पर एक-दूसरे को बतलाते हुए अपन अपने कामो के प्रति चेतन हो चल दिये।

शीला सिर हिला हिलाकर बता रही थी—"हा ! हा ! शोभना ! मैं शीला हू।'

शोभना को याद आया बैंक का काम। वह बोली—"अरे, शीला! तू कार मे बैठ। मैं अभी बैंक का काम करके आती हूं। आज शनिवार है न। बैंक बारह बजे बन्द हो जाएगा। बस मैं गई और आई।"

कार का दरवाजा खोलकर अतिस्नेहपूर्वक शीला की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे भीतर बैठने के लिए कहा। शोभना ने दरवाजा बन्द किया और खट-खट करती जल्दी-जल्दी बैंक की ओर बढ़ गई।

शीला के हृदय का रक्त प्रवाह कभी तेज होता—कभी धीमे। तेज प्रवाह उसे बल देता था और धीमा प्रवाह भाग्य की कुदृष्टि से भय-भीत कर देता था। एक बार विचार आया कि शोभना के आने से पहले ही वह कार से उतर कर चली जाए परन्तु अपनी घनिष्ठ सहेली से मिलकर बातें करने का मोह उसे वहां से उठने न देता था। उसे खयाल आया कि शोभना के घर पर उसके पति भी होंगे। वह क्या सोचेंगे? वह उन लोगों के बीच।

उसने मन दृढ़ किया। कार का दरवाजा खोला। एक पैर बाहर रखा ही था कि शोभना वापिस आती दिखाई दी। शोभना के पास आने पर शीला सकुचाते हुए बोली—"शोभना! अब मैं चलूं। मुझे अपने घर का पता बता दो। मैं अवसर पाकर स्वयं ही मिलने आ जाऊंगी। फिर बैठ कर बातें करेंगे।"

शोभना ने दृढ़ता से कहा—'नहीं, शीला! तुम्हें अभी मेरे घर चलना होगा। खाना खाकर मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दूंगी। तेरा घर भी तो मुझे देखना है। तेरी दशा ने मेरा मन अस्थिर और अधीर कर दिया है। याद है अपना संग संग रहना। समूचे कॉलेज में 'हंसों का जोड़ा' नाम से प्रसिद्ध थे।"

शीला शोभना की ओर स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखकर बोली—"शोभना! प्लीज! आज रहने दो। मुझे घर जाने दो। मेरी जीवन-गाथा से अपना मन व्यथित न करो। मैं फिर कभी आ जाऊंगी।"

शोभना ने कार स्टार्ट कर दी। कार में दोनों बैठी थीं। कुछ ही मिनिट्स में शोभना का घर आ गया। शीला शोभना के साथ घर के भीतर चली गई। शोभना शीला को अपने ड्राइंगरूम में बैठाकर भीतर से

एक बड़े गिलास में संतरे का जूस लेकर लौट आई। बोली—"चल ये शबत पी। मन शात होगा। आज मैंने तुझे अनाप शनाप कहककर तेरा मन दुखाया है। शीला, मुझे माफ कर देगी ना। बता ना। माफ कर दिया ना, शीला ?"

शीला शोभना की कमर से लिपट गई और बोली—"शोभना, मुझे इतना नीच मत समझ। कसूर मेरा था और माफी मुझसे तू माग रही है, पगली! घनिष्ठ मित्रो मे कभी ऐसा होता है! मैं और तू तो 'एक प्राण दो देह' हैं। कभी सपने मे भी अलग होने को नही सोचा था। सच मान, मुझे एक महीने से तेरा खयाल कई बार आया। मैं सोचती शोभना आजकल कहा पर है, इसका पता लग जाता तो मैं उससे मिलकर अपनी व्यथा सुनाती। भगवान ने हम दोनो को मिलाकर दो आत्माओ के प्यार को बल दिया है। कहते हैं ना, दिल से पुकारो तो भगवान भी नंगे पावो भागे आते हैं। मैं आज अपनी इस दयनीय अवस्था को भी सौभाग्य की सज्ञा ही दूगी क्योकि इस टक्कर ने मुझसे मेरी अभिन्न सहेली को मिला दिया है।" शीला ने अब सास ली।

शोभना ने उसे टोका—"अच्छा! अच्छा! अब भाषण ही देती रहेगी। ये बेचारा गर्म होता शबत मुह मे जाने का इतजार कर रहा है।"

शीला ने – 'ओह, हा!" कहकर गिलास को मुह से लगाया और तब ही हटाया जब उसमे दो एक घूट ही रह गई थी।

शोभना ने घड़ी देखी। उसने कहा—"इनके आने मे अभी एक घटा है। चल, मुझे सब बातें बता कि ऐसा क्यो हुआ ?"

शोभना शीला के दोनो हाथों को अपने हाथो मे पकड़कर उसे अपनी ओर खीचते हुए स्नेह सिक्त स्वर में बोली—'शीला, क्या ठाठ थे तेरे। तू सबको समझाया करती थी—अरे, जीवन तो एक संघर्ष है। उसका हिम्मत से, हसकर सामना करना चाहिए। फिर यह सब क्या हो गया ? यह असम्भव सम्भव कैसे नजर आ रहा है। शीला, मुझे सब बातें आज नि सकोच बता। ये दस-बारह वर्षों मे तेरी इतनी काया पलट कैसे हुई ? कैसे हुआ ये सब ?"

शीला ने दीर्घ नि श्वास छोड़ा और फुसफुसायी—"अब क्या कहूँ। इस खडहर मे उन यादो का कही एक मद्धम सा दीपक जल रहा है। चारो ओर बादल ही बादल छाये नजर आते हैं। इन गहरे बादलों मे से सूय किरण चमकने की आस छूटती जा रही है। उदासी और बुरे दिनो मे तो समाज तो क्या अपने भी पराये हो जाते हैं। शोभना ! रहने दे। मेरे क्रूर भाग्य की चोटो से क्षत विक्षत हुए इस जीवन की कथा को सुनकर अपने मन का व्यथ ही दु खी न कर।"

"ना " शोभना ने धीरज बधाया। "शीला ! कहते हैं अपने दु ख को बाटने से दु ख आधा हो जाता है। क्या तू मुझे इसकी भी अधिकारिणी नहीं मानती।"

शोभना ने शीला को कधो से पकड़कर उसे विश्वास दिलाया—'जीवन से विमुख होकर जीने से कोई भी सफल नही होता। जीवन की कठिनाई को पार करने के उपाय करने से ही जीवन की दौड़ जीती जा सकती है। उस उपाय के लिए भी यदि बुरा रास्ता अपनाया तो समाज बाधा दौड़ की भांति तुम्हे अयोग्य घोषित कर देगा। गलत कदम उठाने से बाधा के साथ ही पछाड खाकर नीचे गिर जाओगे।"

उसकी बातें सुनते सुनते शीला कल्पना मे खो गई। शीला का लगा कि दौड के मैदान मे वह दौड रही है और उसकी सहपाठिनिया ताली बजा बजाकर दौड जीत लेने के लिए प्रोत्साहन दे रही हैं। शोभना ने शीला के चेहरे पर मुसकराहट और आखो मे चमक देखी।

शीला ने साहस बटोरा। उसने कहना शुरू किया। "शोभना ! मेरी शादी हुए दस वष ही तो हुए हैं। मेरे एक सन्तान हुई—निशा। हम—मैं और मोहन—एक दूसरे के हमराज, हमदम थे। मोहन एक सम्पन्न परिवार से हैं। मेरे विवाह के समय मोहन, अपने पिता के डिग्री कॉलेज म प्रिंसिपल थे। कॉलेज अच्छा चल रहा था। शादी के तीसरे वय ही मेरे ससुर जी का देहात हो गया। सासजी कुछ महीनो बाद अपने भाइ के पास चली गयी। मोहन अकेली सतान होने के कारण सबके लाडले थे। अब उन्हें घर मे अकेलापन लगने लगा। पिताजी को बहुत याद करते थे। मैं हिम्मत बधाती रहती। उनके एक मित्र सदानन्द पारीक थे जो कॉलेज के साथी

और उनके अपने कॉलेज में ही ससुरजी के समय से ही वाइस प्रिंसिपल थे।' शीला ने ठंडी सांस भरी।

शीला की आंखों की पुतलियां, आंसुओं के कारण उनमें से कभी दीख जाती थीं और कभी नहीं जैसे कोहरे से छाये मैदान में सूर्य की किरणों के पड़ने पर दूर के दृश्य कभी साफ नजर आते हैं और कभी नहीं।

शोभना ने फिर ढाढस बंधाते हुए कहा—"बता, फिर क्या हुआ ? सदानन्द पारीक ने कुछ गड़बड़ कर दी क्या ?"

शीला की देह ऐसे लग रही थी जैसे दुःखों कष्टों के धुएं ने सोने की मूर्ति को धूमिल कर रखा हो। शोभना को याद आया—हम शीला को ईश्वर की स्वयं अपने हाथों से निर्मित कृति मानते थे, उसका कोई भी अंग विद्रूप नहीं था। रूप-रंग सब ही आकर्षक थे। शीला के गुण तो सोने पर सुहागा थे। एक बार ईर्ष्यावश शोभना नाराज होकर बोली थी—"शीला, तू सबसे ही मित्रता करती रहती है। संसार में सब सच्चे मित्र नहीं होते। मुझे तो तू कभी कभी भूल ही जाती है। तू कुसुम और रीटा, इन सबके साथ बैठे बैठे पढ़ती है, बातें करती है। क्या मैं तुम्हारी सच्ची सहेली नहीं हूं ?"

शोभना को शीला का उत्तर भी याद आया—शीला ने मुस्कराते हुए कहा था—"शोभना तू ही मेरी पक्की और सच्ची सहेली है परन्तु ये भी दुश्मन तो नहीं हैं।' और मजाक में यह भी कहा था—' शोभी, इन दिनों मकान के किराये बहुत ऊंचे हो गये हैं। एक एक कमरे में कई कई लोग रहते हैं। ये दिल है न—इसमें चार कोठरियां हैं। अगर एक एक कोठरी में चार चार सहेलियां रह लें तो सोलह सहेलियां इस दिल में रह सकती हैं ना ?' इस बात को कहते कहते दोनों सहेलियां गले मिलकर देर तक हंसती रही थीं।

शोभना इस बात की जांच करने के लिए कि यह शीला वही शीला है, उसके शरीर पर कंधे से लेकर नीचे हाथ तक कई बार अपना हाथ फेरती रही थी।

शीला की सिसकी ने शोभना को जैसे सोते से जगा दिया। शीला के अभिमुख शोभना ने फिर प्रश्न दोहराया—' बता ना, फिर क्या हुआ ?'

शीला अवरुद्ध कण्ठ से बोली—"वह पारीक प्रतिदिन सायकाल मोहन के साथ ही आ जाता था। चाय-नाश्ते के पश्चात् वे दोनो कही घूमने चले जाते थे। रात को दस ग्यारह बजे पारीक मोहन को घर तक छोडने आता था। मेरे पति ने मुझे समझाया था कि पारीक उसका कॉलेज का साथी था। वह उनके दु ख-सुख मे साथ रहा था।"

तनिक रुककर शीला ने फिर आरम्भ किया—"रविवार का दिन था।" शीला के नेत्र इस प्रकार चौडे होकर फटे से रह गए जैसे वह उस रविवार की घटना को आज भी प्रत्यक्ष देख रही हो। जैसे कोई राक्षस मुह बाये हुए उसे निगल जाने के लिए उद्यत हो और वह उससे भयभीत सामने मौत का काला मुह देख रही हो। सभलकर परन्तु अत्यत क्षीण स्वर मे कहना शुरू किया—"दोपहर हो चली थी। बाहर से किसी जीप का कर्णभेदी हार्न सुनाई दिया। कमरे की खिडकी मे झाका। जीप मे सदानद आया था। उसी समय मोहन ऊपर से सीढिया उतरकर मेरे पास आकर बोले—शीला मैं सदानद के साथ जरूरी काम से जा रहा हू। शाम को देर हो सकती है।"

मैंने कहा—"पर तुमने तो लच भी नही लिया है।

मोहन ने तपाक से प्रत्युत्तर दिया—आज सदानन्द के घर पर ही खाना खा लूगा। वह कई दिनो से कह भी रहा था और आज काम भी अधिक है। मेरा इन्तजार मत करना। रात होने से पहले ही आ जाऊगा' कहते कहते मोहन पोर्च मे पहुच गया था और जीप मे बैठकर चला गया।

शीला ने शोभना के हाथों को अपने हाथो मे जोर से इस प्रकार पकड लिये जैसे लताए वृक्षो की डालो को लपेटा देकर सहारा लेती हैं और आश्वस्त होकर आगे बढ़ती हैं।

शीला ने उस दिन की घटना का कथन फिर शुरू किया—शोभना! न जाने क्यो उस दिन मोहन के इस प्रकार चले जाने से मेरा मन घबरा उठा। मेरा दम घुटने लगा। मैंने एकदम निशा को पुकारा जैसे वह मेरी सकट विमोचन औषधि हो। निशा बाहर बगले के बाग मे खेल रही थी। मेरी आवाज सुनकर उछलती-कूदती और कुछ गुनगुनाती मुझसे आकर लिपट

गयी। मैंने उसे [illegible] दिया [illegible] करके बैठाया। खुद भी 'धर्मयुग' लेकर बैठ गयी। [illegible] करके [illegible] कर सो गयी। मेरा मन फिर मोहन की ओर [illegible]। [illegible] में जाकर आम, जामुन के पेड़ों की छाया में बेंच पर बैठ [illegible]।

वह बोला—"[illegible] आकाश में बादल घिर आए। बादल, भिन्न भिन्न रूप बदल रहे थे। एक दहाड़ता हुआ शेर। फिर एक विशाल राक्षस—[illegible] न जाने क्या-क्या भयानक शक्लें बनती बिगड़ती रही थीं। मैंने उधर से मुँह मोड़ लिया क्योंकि मन में भ्रम हुआ कि भयानक शक्लें ही क्यों दिखाई दे रही हैं। सुन्दर दृश्य क्यों नहीं। उसी समय मुझे सदानन्द की हरकतें ध्यान में आने लगीं। उसकी हँसी में कुटिलता झलकती थी।

'आम का पेड़ आमों से लदा हुआ था। मैंने देखा कि एक गिरगिट अपनी पूँछ को लम्बी-सीधी अकड़ाकर, शरीर को पेड़ की छाल से थोड़ा ऊपर उठाकर अपनी पनी आँखों को इधर-उधर सिर के साथ घुमा रहा था। वह पेड़ की एक मोटी-सी डाल पर चढ़कर ठहर गया। पहले उसने गर्दन को फुलाया फिर उसके शरीर की काँटों वाली खाल का रंग बदलने लगा। मैंने सुन रखा था कि जब गिरगिट क्रोधित होता है [illegible] धरता है और वह दूर से ही जिस आदमी पर थूक देता है उस आदमी को कोढ़ हो जाता है। मेरे मुँह से अनायास [illegible] निकल गयी और मैं तो [illegible] एक दो-ढाई मीटर की [illegible] हुई सूम जोर से [illegible] गया, तब मैंने [illegible] की आवाज़ सुनी। पीछे देखा तो मोहन [illegible] दोनों ही बेंच में बैठे थे। मैं पेट की [illegible] में आयी। पेट खाली। [illegible] कार से [illegible] भूल ही गयी। बस, [illegible] कर सुबक-सुबककर रोने लगी। शालिनी ने सिर पर [illegible] चलने को कहा। अब मोहन और माँजी के [illegible] टूट कम हो गया था [illegible] रात से [illegible] जाता है।

माँजी खाना खाकर सो गई थीं [illegible] वापिस [illegible]

चले गये। सायकाल 5 15 बजे दरवाजे पर बेल बजी। सोचा—मोहन होंगे। नही, वह दूधवाला था। मोहन उस दिन रविवार होते हुए भी रात 9-30 बजे लौटे। अबकी बार न सदानन्द साथ था और न ही वे सदानन्द की जीप मे आये थे। मोहन आये थे एक टॅक्सी पे। भीतर आकर सीधा रसोई मे गये। मुझे वहा न पाकर माजी के कमरे मे आये। वहां मुझे पाकर बोले 'माजी मुझे आज कॉलेज मे देर हो गयी। शीला, माजी को खाना खिला दिया ना।' और वह माजी के पायते ही बैठ गये।

"माजी ने उठकर मोहन के माथे पर प्यार किया और पूछा—'मोहन तू परेशान सा दिख रहा है। ऑफिस मे कुछ गडबड हो रही है क्या? बहू उठो, इसे पहले गरम गरम सूप पिलाओ। फिर खाना दो।'

"मैं उठी। रसोईघर मे जाने लगी। मोहन पीछे पीछे ही आ गये और मेरा हाथ पकडकर ऊपर कमरे मे चलने को कहा। मेरा दिल धक धक करने लगा। जैसे जैसे मोहन मुझे ऊपर लिये जा रहे थे दिल की धौंकनी जोर से चलने लगी।"

शीला, जो अभी तक शून्य में देखकर टेप की तरह लगातार बोले चली जा रही थी वह शोभना की तरफ मुडी और कहा— 'शोभना, तू तो अब बोर हो गयी होगी। पर मैं भी क्या करूं। मेरा मन आज अपनी कहानी आद्यन्त सुनाने के लिए विह्वल हो रहा है।

इस क्षण शोभना भावुक होकर बोली— 'शीला की बातें सुनते हुए ऊब नहीं वरन उत्सुकता बढ़ गई है।'

शीला ने फिर कहना शुरू किया— 'ऊपर कमरे मे बैठकर मोहन ने हारे हुए थके के स्वर में बताया— शीला पिताजी के देहांत के पश्चात् और माताजी के यहां से चले जाने के बाद तुम्हारे घर में होते हुए भी न जाने क्यों मुझे अकेलापन अनुभव हुआ। मैं सदानन्द के साथ अधिक समय व्यतीत करता रहा हूं। सदानन्द आफिस में मेरे साथ खूब काम करके काम जल्दी निपटवा देता है। पहले से अधिक सहानुभूति दिखाने लगा है। परन्तु उसका व्यवहार कुछ शंका पैदा करने लगा है। वह नये नये सूट पहनता है। उसने जीप खरीद ली है। वह कई अजनबी व्यक्तियों से मेल मुलाकात रखता है। कभी कभी वक्त बेवक्त कॉलेज आता

है तो सदानन्द अपने ट्यूटोरियल रूम में बैठा कुछ लिखा पढ़ी सी करता रहता है। परसों मुझे चौकीदार से मालूम हुआ कि वह तो प्रतिदिन रात के ग्यारह-बारह बजे तक कमरे को बंद करके कुछ करता है। जाते समय एक थैला किसी चीज से भरा हुआ ले जाता है। इस पर कुछ प्रतिक्रिया न दिखाते हुए मैंने चौकीदार को चेतावनी दे दी थी कि वह कॉलेज के गेट पर साढ़े आठ बजे ताला लगा दे। चौकीदार के ऐसा करने पर सदानन्द आज मुझसे बहुत अकड़ा। मैंने समझाया कि इसमें सदानन्द की ही भलाई है क्योंकि कॉलेज में कोई भी घटना हो तो उस पर आरोप न आये। पर नहीं। सदानन्द नाराजगी से बोला कि वह तो रात को ही आकर काम करेगा। और उसने सारी दोस्ती भुलाकर यह भी कहा— बच्चू, रख अपने कॉलेज की नौकरी। मैं तुझे समझ लूंगा। तू तो क्या—तेरे घर वाले भी नाक रगड़ते आएंगे। कौड़ी-कौड़ी को तुझे मोहताज ना कर दूं तो मेरा नाम सदानन्द नहीं। उस समय मोहन के नथुने फूल रहे थे। वह क्रोध और चिंता दोनों से घिरे थे।'

'मेरा मन अशुभ के पैर पड़ते देख रहा था परंतु पति को साहस दिलाने के उद्देश्य से मैंने कहा— 'छोड़ो भी अब। अपनी सेहत का ध्यान रखो। मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए। वैसे मुझे पारीक कभी भी अच्छा नहीं लगा। उसकी हंसी में एक व्यंग्यात्मक रहस्यमयी हंसी देखकर मैं उसके छल का अनुभव करती थी। व्यक्ति की हंसी उसका वास्तविक चरित्र बता देता है। वह सीधा आदमी नहीं है। उससे सचेत रहना ही श्रेयस्कर है। अब रात हो रही है। चलो खाना खायें और फिर सोयें।

अगले दिन मोहन शाम पांच बजे ही घर आ गए। निशा को पुकारते हुए घर में घुसे। निशा, बाहर लॉन में बैठी दादी से गप शप कर रही थी। निशा बोली— पापा, हम तो इधर हैं। आप भी यहां आ जाओ। मम्मी को भी बुलाओ।' मैं जब तक मोहन की आवाज सुनकर बाहर आ ही गई थी। दादी बोली —'निशा के तो पेट में दाढ़ी है। दुनिया भर की बातें करती है।'

निशा ताली बजाकर हंसी और बोली—'दादी! आपको यह भी मालूम नहीं कि लड़कियों के दाढ़ी नहीं उगती। उसकी बात सुनकर

हम सब हस पडे।"

शीला इस समय स्वाभाविक महज क्रिया से प्रेरित, बालिका के प्रति माता के प्यार से गद्‌गद हो सस्वर हसन लगी। जैसे उसे बाल कृष्ण लीला के प्रत्यक्ष दशन हो गए हो। वह अपने को धन्य मान रही हो। शोभना भी इतने घण्टो के बाद शीला को प्रसन्न देखकर मुसकराई। परन्तु निराशा के बादलो मे चाद की य हल्की सी चादनी अधिक देर तक न रह सकी। शीला, जैसे अपने आप पर स्तम्भित होकर शोभना की ओर देखन लगी।

'शोभना! उस दिन हम सब अपनी कार मे बैठकर घूमन गए। बाग म आइसक्रीम खाई। हसते बतियाते वापिस आकर बैठे ही थे कि ।" शीला वाक्य पूरा भी नही कर पायी। वह पागलो की भाति चुप बैठ गई। उसकी आखें फैल गई फैलती गइ और फैलती गइ।

शोभना न किसी भयानक परिणाम की दुराशा से आशकित होकर शीला को जोर स झक्झोरा। सस्नेह सान्त्वना देते हुए उसे पानी पिलाया।

शीला न पानी पीकर जसे जगल की भयानक रात्रि म किसी मकान पर बैठने का आश्रय पाया और फिर कहना शुरू किया—"शोभना, सुख की रुपहली धूप के पश्चात ऐसी प्रलयकारी घटा छाएगी—यह हम नात न था। रात्रि के दस बजे थे। 18 सितम्बर का दिन था। आज से पाच साल पहले की बात है। खाना खाकर मोहन ने कहा— मैं कॉलिज का चक्कर लगाकर आता हू। सत्यानन्द की बात मुझे चुभ गई है। वह आज भी शायद कॉलिज आया हो। न जान रात म वह भीतर ही भीतर क्या करता है?

'यह कहते-कहते मोहन कॉलिज चले गए। रात के ग्यारह बजे। बारह बजे और धीरे धीरे पूरी रात ही ढल गयी। चिन्ता के मारे बनजा मुह को आन लगा। प्रात 5 30 बजे, मैंने जाकर माजी को जगाया। कॉलेज में फोन किया तो चौकीदार ने फोन उठाया। बस चौकीदार की बात सुनकर मैं तो आकाश स धरती पर गिरकर चूर-चूर हो गई। माजी ने मुझे बाह पकडकर हिलाया और पूछा—बहू! क्या हुआ? क्या बात

ज्यादा था जिससे मोहन रात भर नही आया ? पर तू इस प्रकार पीली क्यो पड गई है ? मुझे भी तो कुछ बता ?'

"कब्र से आती आवाज से मैंने माजी को बताया—'रात को ये जैसे ही कॉलिज मे सदानन्द की जाच करने के लिए उस कमरे मे गए जहा सदानन्द प्रतिदिन रात म बैठकर गुप्त काय किया करता था वैसे ही कॉलेज के दरवाजे पर पुलिस आ गयी। उन्होंने वहा पर इन्हे पाकर इन्हे ही गिरफ्तार कर लिया। चौकीदार ने यह भी बताया है कि कॉलेज के तहखान मे बारूद बनान का काम चल रहा था। इसलिए मोहन जैसे ही तहखाने मे पहुचा कि पुलिस द्वारा पकडा गया।' शोभना, और सुनो ! यह खबर पाते ही हम लोग रात बिलखते, थान पहुचे तो सदानन्द मेरे पास आया। वह अबोध बनकर सहानुभूति जतान लगा— भाभी ! चिन्ता न करें। यह गलती मोहन से हो गई है। उसन इस विषय म मुझे भी तो कभी कुछ नही बताया था। अब हमे उसके लिए शीघ्र ही कुछ करना होगा। मैंने एक वकील म बात कर ली है। वह हमारे पडोस का विश्वसनीय वकील है। भाभी, बस कुछ पैसा का—लगभग पाच छ हजार का प्रबन्ध करना होगा।'

'शोभा, मेरा मन सदानन्द की बात से आश्वस्त नही हुआ। शाम को अकेले मे मोहन से मिलन गई। मोहन न सब बातें स्पष्ट की कि सदानन्द किस प्रकार उससे धाखा करता रहा था। वह ही रातो को बैठकर आतक-कारियो के लिए बारूद बनाता था।"

गम की मार दिल मे तो आग लगाती है पर आखा स जल बरसाती है। शीला का मन गम की भारी चोट स तडप उठा था। आसुआ की धारा ज्वालामुखी से निकले लावे की तरह उसके सारे शरीर को जलाने लगी।

"शोभना, समाज बहुत क्रूर है। वह चढते सूय को ही नमस्कार करता है, डूबते को नही। जहा भी नौकरी की दरख्वास्त दी, वही पर मोहन की बात को लेकर चर्चा चली और नौकरी नही मिली। इतने वष हो गये। कोट फैसला ही नहीं कर रहा है या फिर ऐसा लगता है कि सदानन्द ही फैसला नही होने देता है। अभी दो महीन हुए एक प्राइवेट स्कूल म

—

सहायता

प्रत्यक्ष देखा, अपनी आखो से देखा और देखती ही रह गई। उस समय मैं सात वर्ष की थी।

मानव जीवन मे अनेक घटनाएं घटती हैं परन्तु कोई एक घटना ऐसी होती है जो मस्तिष्क मे जमकर अंकित हो, रह जाती है। यह स्थिति उस घटना के कारण नही वरन उस घटना के अच्छे बुरे प्रभाव के कारण होती है। मानव स्वभाव के अनुकूल घटना के प्रति व्यवहार न होने से भी घटना अपना प्रभाव हमारे मानस पटल पर छोड देती है। ऐसी ही एक घटना ने मेरे मन को प्रभावित किया था।

एक रोगी जनवरी की कडाके की ठण्ड से ठिठुरता हुआ सडक की भीड से बचने के लिए फुटपाथ पर चढा। वह बहुत दूर नही चल पाया। वही उसने एक पेड का सहारा लिया। वह खडा नही रह सका और नीचे की ओर लुढक गया। पेड के तने पर सिर टेक लिया।

उसी समय फुटपाथ पर चलते एक व्यक्ति की नजर उधर पड़ी। उसने दयाभाव से चच, चच किया और बोला—"पूर्व जन्म के कर्मों का फल है जो कष्ट पा रहा है।"

व्यक्ति आगे बढ गया। शायद उस निःसहाय कृषकाय रोगी की सहायता करने का उसके पास समय नही था।

तत्पश्चात रोगी ने दुःखी मन से रोगी-काया को सम्बल देते हुए अपनी निगाहें फुटपाथ की ओर उठायी क्योंकि उसे एक अन्य व्यक्ति के

वहां से गुजरने का आभास हुआ था। आने वाला व्यक्ति झुककर आंखें फैलाकर रोगी को ही गौर से देख रहा था। सफेद कुर्ता सफेद पायजामा और सफेद ही टोपी धारण किये था वह। ऐसे स्वच्छ वस्त्रधारी को देखकर रोगी आश्वस्त हुआ कि यह महाशय उसकी सहायता अवश्य ही करेंगे।

व्यक्ति रोगी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य से सभ्य किन्तु भाषण के लहजे में बोला—'ऐसे असमय व्यक्ति की सहायतार्थ सरकार द्वारा कुछ न कुछ अवश्य करवाऊंगा। आप जैसे व्यक्तियों के लिए निःशुल्क चिकित्सा का प्रावधान होना ही चाहिए। हम समाज मत्र के समाज की सेवा करने के लिए ही तो हैं। मैं मन्त्री महोदय से ही मिलने जा रहा हूं। लौटकर तुम्हें मिलता हूं।"

रोगी थकान और पीड़ा से मुंदती आंखों को बलपूर्वक खोलकर उस व्यक्ति की ओर ताकने लगा। परन्तु तब तक व्यक्ति पग बढ़ाता आंखों से परे जा चुका था।

हताश, ज्वर से जलता रोगी अधमरा सा फिर पेड़ के सहारे पड़ गया। शायद कुछ देर सोने का प्रयत्न कर रहा था। दूसरे ही क्षण चौंक कर उठा क्योंकि एक हृष्ट-पुष्ट लम्बी-लम्बी दाढ़ी मूछ वाले व्यक्ति ने उसे पकड़कर हिलाया था। वह जानना चाहता था कि रोगी मृत है या जीवित। व्यक्ति का कर्कश स्वर था।

व्यक्ति सरकार को कोस रहा था—"न जाने यह सरकार कभी कुछ प्राप्त कर पायेगी या नहीं। देश में तुम्हारी तरह अनेक असमर्थ, अधपेट तड़प तड़पकर मर रहे हैं परन्तु मजाल है कि सरकार के कान पर जूं भी रेंगे। लक्ष्य ऊंचे ऊंचे है, वायदे बड़े बड़े करते हैं। गरीबी जड़ से उखाड़ फेकेंगे। गांव गांव में अस्पताल खोलेंगे। देश के दूरस्थ स्थानों में भी स्कूल खोलेंगे। आदि आदि। पर कब? कब होगा यह सब? तुम्हारे जैसे व्यक्ति जिनका अपना कोई नहीं, उनके लिए तो सरकार को प्रबन्ध करना ही चाहिए। अरे, क्या करेगी यह सरकार! निकम्मी हो चली है। हमारी सरकार होती तब देखते!"

व्यक्ति व्यंग्यात्मक ढंग से अपना बायां हाथ ऊपर की ओर मटकाता रोगी को अपने हाल पर छोड़कर चला गया।

ध ग वा ऽ ऽ न" रोगी न दीघ नि श्वास छोडत हुए परमेश्वर का स्मरण किया। सिर को अपनी बाहो मे छिपा लिया। करता भी क्या? शरीर निस्तेज, मन शिथिल था। मस्तिष्क सोचने की शक्ति खो रहा था।

कहक की आवाज स रोगी को आश्चर्य हुआ। उसन अपने सिर को ऊपर उठाये बिना ही टेढा करके देखा कि एक अय व्यक्ति ने उसी की तस्वीर खीची है। भला वह उसकी तस्वीर क्यो खीच रहा है?' रोगी को इसका उत्तर मिलत देर न लगी।

व्यक्ति कैमरे को बन्द कर उसे थैले मे रखते हुए 'हा हा हा ठहाका मारकर हस रहा था। कुछ और लोग भी वहा आकर खडे हो गय थे। उनकी ओर मुह करके व्यक्ति बताने लगा—"हम समाज को इकाई मानते हैं। उस व्यवस्था म कोई भी इस प्रकार कष्ट नहीं पा सकता है। मैं यह तसवीर आज ही समाचार पत्र मे छपवाऊगा। जनता को मालूम तो हो कि इस सरकार के राज मे रोगी, निधन दलितो की क्या दशा है? वे कीडे-मकोडो की भाति नरक भोग रहे है। कोई सम्भालने वाला नही है। मैं अभी जाता हू। आप लोग कल ही यह समाचार सचित्र पढिये।"

वह व्यक्ति तीव्र गति से वहा से चला गया। और लोगो ने भी शायद किसी झझट म न पडने के इरादे से किनारा किया।

रोगी व्यक्ति के जीवन चिराग का तेल बीत चला था। वह अपने छोटे से ओढने के वस्त्र को तन पर सभालता अधलेटा-सा पड गया। सिर ढकने के प्रयत्न मे पैर नगे हो जाते थे। उसने पैरो को वस्त्र से ढका और घुटने छाती मे घुसाते हुए सिर को बाहो से ढक लिया। रोगी की कपकपी छूट गयी थी।

अधचेतन रोगी के मन म प्रत्यक उपरोक्त व्यक्ति का आगमन शायद उसकी बुझती आशा मे प्राण फूकन का काम करता था परन्तु उन सबके चले जाने की हवा जीवन-दीप की लौ को मन्द से मन्दतर करती चली गयी। निष्क्रिय सहानुभूति के शब्द—कवल शब्द पत्थर की-सी चोट पहुचाकर घायल ही कर रहे थे। शाब्दिक सांत्वना, जो रोगी का न तो दवाई ही पिला पायी और न ठण्ड से रक्षा हेतु रजाई ही उढा सकी, वह किस काम की?

मैं अपन कमरे की खिडकी से ये सब देख रही थी। कोई आधेक घण्टे में ये सब हुआ था। मैं अपने आप को इन सब कामों के लिए बहुत छोटा समझ रही थी परन्तु अब मुझसे सहन नही हुआ। अपनी ममी का यह सब बताया और हम एक मोटा सा कम्बल लेकर नीचे आए। आस-पडोस से दो और व्यक्तियो को भी बुलाया गया।

रोगी की दशा और उसकी तडपन देखकर लगा कि उसकी सहायता करन मे विलम्ब हो गया है। ममी ने कहा—"फिर भी कोशिश करन मे कोई हर्ज नही।" उन्होने कार बाहर निकाली। व्यक्तियो की सहायता से रोगी को अस्पताल ले जाने के लिए कार म लेटाया गया।

रोगी अचेतन था। मुझे लगा कि वह गहरी नींद सो रहा है। मुख-मुद्रा शात और स्वप्नो मे खोई सी प्रतीत हुई। अब विचार आता है कि वह तो जैस सुन्दर रथ मे बैठा ऊचे और ऊचे उठ रहा था। वह ऐसे माग से जा रहा था जहा पर सम्पूर्ण वातावरण स्वच्छ और सुगन्धित होगा। जहा पर दुख की छाया भी नही पहुचती होगी। उसके चेहरे पर पूरा आराम और सन्तोष नजर आ रहा था। वह इन लोगो के अविश्वास, द्वन्द्व, राग द्वेष से बहुत दूर चला गया था।

सक्रिय सहायता मे विलम्ब के कारण मैं आज भी उस दृश्य, घटना को भुला नही पाती हू। टाल्सटाय के शब्दो को कायरूप मे परिणत करन का प्रयत्न करती हू।

वे कहते हैं—

How can the love of god live in rich man who sees his brother in need and does not help him

My little children, let us not love by word or with our tongue put in deed and truth

८

आत्म-सम्मान

फतेहपुर के बड़े चौराहे पर स्थित एक पान की दुकान पर पान खाने की इन्तजार में चार पांच आदमी खड़े थे। उनमें से एक व्यक्ति ने पानवाले से पूछा—"यार श्याम ! आज वह औरत दिखाई नहीं दे रही ?"

पानवाला जानता था कि वह किस औरत की बात कर रहा था। उसने पान लगाते-लगाते लोटे पर 'टन' की आवाज के साथ ही साधारण स्वर में उत्तर दिया—"हां, जनाब ! अभी तक तो मैंने भी नहीं देखा है। आती ही होगी।"

उसी व्यक्ति ने फिर कहा—"यार वह पगली बगली तो नहीं लगती है क्योंकि न किसी को गाली देती है, न किसी को मारती है। बस बैठी-बैठी अपने आप से कभी कभी कुछ बातें करती है या यहां तुम्हारी दुकान के सामने सड़क पर इधर से उधर घूमती है बिना कुछ काम।"

पान की दुकान से कुछ दूरी पर ही एक बड़ा पीपल का पेड़ था। उसके चारों ओर पक्का चबूतरा बना था। चबूतरे पर चढ़ने के लिए सड़क की ओर से तीन पक्की सीढ़ियां भी बनी थी। पीपल की जड़ में ढेर सारा रोली का रंग लगा था और रंगीन मौली के कई धागे पड़े चारों ओर बंधे थे। दुर्गा इन स्त्रियों को देखती थी। वह कभी कभी इस प्रकार अन्धविश्वास से पूजा करने पर विरोध में अपने विचार भी प्रकट करती परन्तु स्त्रियां उसे पगली जान उसकी बात को हंसी में टाल देतीं।

दुर्गा बातें करती अथवा सड़क पर घूमती परन्तु उसकी निगाह सड़क के दूसरी ओर बनी हवेली की ओर ही रहती। वह दो तीन माह से इधर

प्राय प्रतिदिन ही आती थी। न जाने किस को ढूँढ़ती थी ! शहर वाले उसके विषय मे अधिक नही जानते थे । बस इतना जानते थे कि वह फतेहपुर की डूगरी के पीछे वाली बस्ती की ओर जाती है।

पान की दुकान पर खड़े दूसरे व्यक्ति ने इशारा किया—"देखो ! वह पगली आ गई। उधर पीपल के पेड़ के पास चबूतरे पर बैठी है।"

आज दुर्गा अकेली बैठी एकटक सामने हवेली की ओर देख रही थी जैसे उस किसी की प्रतीक्षा हो। हवेली मे कुछ लोग बार-बार बाहर-भीतर आ जा रहे थे। व आदमी घबराहट म थे।

स्टेशन से यात्रियो से भरी एक बस अमरापुर गाव की ओर से आई और पान की दुकान के ठीक सामने रुकी। उसम से दो युवक कधे से झोला लटकाये उतरे। सडक पार कर हवेली की ओर बढे। जल्दी जल्दी सीढ़िया पर चढे। दरवाजे पर बैठे वृद्ध चौकीदार स कुछ बात की और दरवाजा खोलकर भीतर दाखिल हो गए। भीतर क्या हो रहा, यह मालूम नही पड़ा।

दुर्गा ने देखा कि अबकी बार जो नौकर बाहर आया उसने बाहर बैठे अन्य चार पाच आदमियो को कुछ समझाया। उसने वृद्ध चौकीदार को भी कुछ कहा। चौकीदार आशकित होकर जोर से बोला—"क्या कह रहे हो ?'

(वह खड़ा हो गया) सेठ जी का स्वगवास हो गया ?"

बेचारे बहुत दिनो से कष्ट पा रह थे।" चौकीदार की यह बात दूर तक सुनाई पडी।

लोगों न देखा कि यह सुनकर दुर्गा की आखो मे अचानक एक चमक-सी आ गई। वह अपनी बठक छोड उछलकर खडी हो गयी। अट्टहास करती खुशी से पागल बस्ती की ओर भागी। चिल्ला चिल्लाकर कह रही थी, राक्षस मर गया। राक्षस मर गया।'

कुछ ही समय पश्चात दुर्गा बस्ती वालो के साथ वापस आई और इधर-उधर बातें कर रही थी।

इस हवेली और हवेली के लोगो को दुर्गा अच्छी तरह जानती थी। इस हवेली से उसका अनोखा परिचय था। वह विश्वास से कह रही थी

कि यह हवेली महादेव ब्राह्मण की ही है और आज महादव ब्राह्मण ही मरा है।

महादेव ब्राह्मण ने अपने जातीय धर्म को छोडकर वनिय की वृत्ति म मन लगाया हुआ था। अ य व्यापारिक ध धो के साथ-साथ शहर के छोर पर उसन एक जुआखाना व शराबखाना खोल रखा था जिमम बेईमानी झूठ और व्यभिचार का राज था। अपना नाम मशहूर करने और गलत ढग से धन कमाने को छिपाने के लिए उसने एक अस्पताल, एक बाल विद्यालय और विधवाश्रम भी शहर मे खोल रखा था। उसके पास इन सस्थाओ स न केवल धन बल्कि ऐशो-आराम का सामान भी पहुच जाता था। लोगो की वाहवाही और अनाप शनाप धन प्राप्त हो जाने से सेठ जी के मन म अहकार ने वास कर लिया था। वह अपने अतिरिक्त और किसी के अस्तित्व को नकारने लगे थे। दूसरो का जीवन, दूसरो का परिवार, उनके सुखचैन की महादव को तनिक भी परवाह नही रही थी। उसे परायी स्त्रिया के साथ व्यभिचार करन जैसी आदत हो गई थी। वह जरूरतम द गरीबो को मज दन के समय मीठी छुरी बनकर झूठे कागज पर उनके हस्ताक्षर ल, समय पाल ही उसकी जमीन अथवा जेवर हडप लता। उस गरीब की गदल महादेव के हाथ मे सदा के लिए गिरवी रह जाती।

महादेव के अत्याचार बढन लगे। फतेहपुर की डूगरी के पीछे बसने वाले और मजदूरी के चार पैसा से अपना पेट पालन वाले महाज्ञ ब्राह्मण के नाम से ही थरथराने लगते। वह बस्ती की जवान लडकिया को अपन यहा नौकरी के लालच मे बुलवाता। विधवा आश्रम की बेसहारा औरता से अपन हृट्टे-कट्टे शरीर पर मालिश करवाता। हवस की शिकार लडकियो को दूर जगल मे छुडवा देता। बस्ती की लडकिया वापस बस्ती म जात घबरातीं। उनम से अधिकतर ने दरिया म या फिर कुए म कूद कर अपनी जान गवा दी थीं। इसी प्रकार छल स बुलवाई गई और महादेव के द्वारा बलात्कार की गई दुर्गा ने ऐसा नही किया। वह रोती बिलखती अपने एक मात्र जीवित भाई गोवि दा के पास लौटी। गोवि दा उसी समय शहर से कमाई करके लौटा था। अपनी बहन के लिए काल बाडर की लाल रग की साडी लाया था। गोविन्दा न देखा कि घर का

दरवाजा खुला है। बहन को आवाज दी। कोई उत्तर प्राप्त न हुआ। फिर आवाज लगाई। सुनसान घर में उसकी आवाज गूंज उठी। चारों ओर दौड़-दौड़कर 'दुर्गा दुर्गा' कहता बहन को ढूंढ़ने लगा। दुर्गा वहां होती तब न! दरवाजे की तरफ मुड़ा तो दुर्गा को इस प्रकार घबराई हुई, बदहवास भागती आते देख गोबिन्दा का मन क्रोध मिश्रित आश्चर्य में बदल गया। वह आगे बढ़कर अपनी सुबकती बहन को घर के भीतर ले आया।

दुर्गा की जुबानी सारी बात सुनी तो गोबिन्दा का खून उबलने लगा। उसने कसम खायी कि वह दुर्गा की ऐसी दुर्दशा करने वाले की बोटी-बोटी नोच कर चील-कौओं को खिला देगा।

दुर्गा ने भाई का क्रोध देखा। सोच विचार कर भाई को समझाया— "इन व्यक्तियों से सीधा भिड़ने के बजाय यदि इनकी जड़ों में घुन लगा सकें तो बेहतर होगा। अन्यथा क्रोधाग्नि में महादेव को मृत्यु के घाट तो उतार सकते हैं परन्तु कानून के हाथों आप भी मृत्यु अथवा आजीवन कारावास की सजा भोगेंगे। मैं तो फिर हर तरह से दर दर की ठोकरें खाने को ही रह जाऊंगी न भैया! करीम के बाप को महादेव ने जमीन हड़पने की नीयत से उसके न झुकने पर मरवा दिया था। फिर करीम ने बदला लेने की ठानी तो शराब की बोतलें उसके घर में रखवा कर पुलिस को खबर कर दी और करीम को कैद करवा दी। सुक्खी ने जब अपनी जवान लड़की से दुर्व्यवहार करने पर हल्ला किया तो मालूम है न, उसकी झोंपड़ी में आग लगा दी। भैया! औरों की भांति आज मैं भी आत्म-हत्या कर सकती थी। परन्तु नहीं! मैंने बीड़ा उठाया है कि इस पापी को इसके ही पाप में भिगो भिगो कर सड़ाकर मारूंगी।"

गोबिन्दा ने अपने क्रोध को शान्त किया और बहन की बात में वजन है यह जानकर उसकी सहायता करने का निश्चय किया।

उस बस्ती के लोग दुर्गा और गोबिन्दा को अपने से कुछ भिन्न समझते थे। भिन्न इस आशय से कि वे शहर की हवा ले चुके थे। वे शहर से प्राप्त मजदूरी से खाना-पीना अच्छा करते और दूसरों की अपेक्षा अधिक साफ सुथरे रहते थे। बस्ती के लोगों में प्रायः झगड़ा होता परन्तु ये अपने

को उन झगड़ो से अलग ही रखते । तू-तड़ाक तेरे-मेरे करने की उनकी आदत नहीं थी। कह सकते हैं कि वे अन्य लोगो से अधिक सभ्य थे।

दुर्गा को अब महादेव से बदला लेने की घड़ी की इन्तजार मे दिन रात चैन न आता। वह खाते पीते उठते-बैठते इसी चिन्ता मे डूब जाती कि कौन सी तरकीब लगाई जाए जिससे सब बस्ती वाले उस राक्षस महादेय का सीना तानकर मुकाबला कर सकें।

श्रीमती शर्मा स्वयमवी सामाजिक कार्यकर्त्ता न गन्दी बस्तियों के सुधार का जीवन ध्येय बनाया था। वे चाहती थी कि बस्ती वालो का सामाजिक तथा व्यावहारिक स्तर ऊंचा उठे और वे भी देश के सुनागरिक कहला सकें।

गोविन्दा ने उन्हें अपनी बस्ती की ओर भी आते देखा था, जहा हवा भाप की तरह गरम और उमस भरी थी, जहां सड़ते हुए कूड़े-कचरे की तीखी बू भरी थी। जहा चूहे निर्भय अंधेरे मे उछल कूद मचाते थे। बस्ती के बाहर ही दूर तक चीख-चीखकर कोसना और गाली गलौच के गन्दे शब्द कानो को बन्द कर लेने पर मजबूर कर देते थे। कांच आदि टूटने, बरतनों का फेंकना, पटकने की कर्णभेदी झनझनाहट तथा लोगों के इधर-उधर भागने की आवाजें प्राय रात की नींद उखाड़ देती थी।

गोविन्दा ने श्रीमती शर्मा के विचारो को जानने के बाद उनसे बस्ती के सुधार के लिए काम करने का विचार किया। श्रीमती शर्मा के हृदय मे बस्ती-सुधार के लिए उस बस्ती को देखकर भय की अपेक्षा आक्रोश अधिक था। उन्होंने कहा कि यह बस्ती पास के शहर के ऊंचे-ऊंचे भवनो मे शरीर के कोढ़ के घाव की तरह दीखती है। यह बस्ती अभावों के कारण अभिशप्त अपराधियों का गढ़ बन गयी है। व कहने लगी कि वे इस घाव को सही करने के लिए भरसक प्रयत्न करेंगी। परंतु उनके उत्साह और उनकी उत्कट इच्छा तभी कामयाब हो सकती थी जब कि बस्ती वाले भी अपना उत्थान चाहे। यह उत्थान की इच्छा पैदा करने के लिए श्रीमती शर्मा ने बस्ती के लोगो को बस्ती मे ही बने एक टूटे फूटे मन्दिर के चबूतरे पर सभा बुलाई। भजन-कीर्तन प्रारम्भ किया जिसमे बस्ती के बच्चे, बड़े-बूढ़े और कुछ स्त्रियां सम्मिलित हुई। पश्चात श्रीमती शर्मा ने

बस्ती के सुधार, विकास के विषय में बात की। बस्ती वालों ने दुर्गा और गोविन्दा को श्री शर्मा से सम्पर्क बनाये रखने के लिए चुना। उन्होंने दुर्गा और गोविन्दा को धन और साधन दोनों से सहायता दी। शीघ्र ही बस्ती वाले सुधार रूपी गंगा में स्नान करने लगे। श्रीमती शर्मा ने दुर्गा और गोविन्दा की सहायता से लोगों में आत्म निर्भर बनकर आत्म सम्मान से जीने के बीज बो दिए। दो-तीन आदमी एकत्रित होकर सांझ ढले मंदिर के चबूतरे पर बैठे बतिया रहे थे कि जो अमीर लोग उन्हें कूड़ा-कचरा समझकर समाज में निकृष्ट स्थान दिए हुए हैं वे अपने परिश्रम से अभावों को दूर करेंगे और धनवानों को बता देंगे कि उनके बगैर वे लोग कुछ भी नहीं हैं। वे उनके अहंकार और अत्याचार का खात्मा करेंगे।

दुर्गा और गोविन्दा जी-जान से इस पुण्य, महत्त्वपूर्ण सतकार्य में जुट गए परन्तु उन्हें तो महादेव ब्राह्मण का विशेषतौर पर पर्दाफाश करना था। एक दिन पुलिसवालों से उन्होंने महादेव के काले धन्धों की बात की परन्तु पुलिसवालों ने उनका मजाक उड़ाते हुए कटाक्ष किया—'अरे! मूर्खता मत करो। इन लोगों के खिलाफ आवाज उठाओगे तो दो-तीन दिन में ही टैं बोल जाएगी। चुप करके बैठो।"

श्री शर्मा ने दुर्गा की सहायता से हुनर वाली औरतों की टोली बनाई और उन्हें कच्चा माल ला कर दिया। दुर्गा घर घर जाकर रद्दी कागजों में सब्जी आदि रखने की थैलियां, सूती-ऊनी धागों की लच्छियां से गोले बनवाती। छोटे छोटे कपड़ों पर तुरपाई आदि करवाती। "सीखो—कमाओ' योजना के अंतर्गत मजदूरी के वाजिब पैसे दिलवाती।

घरों का स्तर सुधरने लगा। लोगों में धन प्राप्ति के साथ साथ आत्म विश्वास पैदा हुआ। बस्ती की आर्थिक स्थिति में सुधार होने से लोगों का आपस में प्रेम स्नेह बढ़ा। बस्ती वाले दुर्गा और गोविन्दा को आदर की दृष्टि से देखने लगे। सभी प्रातः काल से सायंकाल तक काम में व्यस्त रहते। उसके पश्चात चौपाल पर बैठकर अपनी-अपनी राम कहानी कहते।

दुर्गा 'मां दुर्गा' की पूजा नित्यप्रति करती और शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करती। दुर्गा जब सिल-बट्टे पर मसाला पीसती तब उसके

दात भिचते और वह महादेव ब्राह्मण का इसी प्रकार पीस डालना चाहती थी। वह आखली मे चावल कूटती तब वह महादेव ब्राह्मण का सिर उसी प्रकार कूट दना चाहती थी परतु अभी भी दुर्गा को महादेव के लिए सही सजा सूझ नही रही थी।

वैसे अब महादव ब्राह्मण की कुचालो की पकड न के बराबर हो गई थी।

बस्ती की दो जवान खूबसूरत और आकषक लडकिया— छमिया और दुलारी के आकषक चरित्र मे परिवतन करना असम्भव सा लग रहा था। व रात के दस ग्यारह बजे तक नशे म धुन लुढकती-पुढकती बस्ती मे पहुचती। कभी-कभी तो अपनी झोपडो मे पहुच भी न पाती और बाहर ही गिर पडती। एक बार छमिया को तेज बुखार ने घर दबाया। उसके सारे शरीर मे दद था। उठा भी नही जा रहा था। खटिया पर लेटी 'हाय हाय" कराह रही थी। पडोसन के बताने पर दुर्गा ने वैद्य को बुलाया। वैद्य की दवाई और दुर्गा की सप्ताह भर की सेवा ने छमिया को स्वास्थ्य-लाभ दिया। छमिया दुर्गा की भक्त बन गई।

दुर्गा ने छमिया और दुलारी दोनो को ही अपने भाई गाविन्दा क साथ पाचू, महादेव के मुह लग नौकर के पास भेज दिया। दोनो का सेठ जी ने खुशी खुशी अपने काम के लिए रख लिया। वे काम कम करती मटक-मटककर बातें अधिक करती। सेठजी के मन-बहलाव के लिए वे साज श्रृगार भी करती। उनके पैर दबाती फिर उनकी वासना की पूर्ति करती। कुछ दिनो बाद दुलारी का तो महादेव ने अपने मित्र सठ दुर्गादास के पास भेज दिया और छमिया रात दिन सेठजी के घर पर ही रहती थी।

सुना था कि सेठजी का स्वास्थ्य ठीक नही रहता। व एक साल मे ही आधे हो गए। कारण का न उनका पता लगा न डॉक्टरो का। हल्का बुखार भी शरीर की हड्डिया तोडे जा रहा था।

दुर्गा का इन सबकी सूचना छमिया से लगती रहती थी। दुर्गा मुह से दुख प्रकट करती। छमिया को सेठ की सेवा तन और मन दोनो से ही करने के लिए उकसाती। परतु दुर्गा मन ही मन मे सतुष्ट होती। अपने भाई

गोबिन्दा को कहती—"भैया ! अब वक्त आ गया है जब हमारी मन की मुराद पूरी होने वाली है। सेठजी का उनके कुकर्मों का फल अवश्य मिलेगा।"

पीपल के पेड़ के पास चबूतरे पर लोग एकत्रित हो गए थे। कुछ गम्भीर थे। कम लोग थे जो सेठ जी की मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहे थे। अधिकतर खुश नजर आ रहे थे। वे चाहे सेठजी के जीते जी उनसे भय के कारण ही प्रीति रखते थे।

छमिया ने बताया था कि डॉक्टरों ने पूरे टैस्ट्स करने के पश्चात् सेठजी का जानलेवा 'एड्स' की बीमारी बताई थी। वे कुछ दिनों से तो पड़े ही रहते। हिलने-डुलने की शक्ति भी नहीं रही थी उनमें। एक दिन दुर्गा और गोबिन्दा उन्हें देखने गए तब दुर्गा की आंखों का भाव देखकर सेठजी के चेहरे पर क्षमा-याचना के भाव प्रकट हुए थे।

सेठजी तिल तिल करके मरते रहे। उन्होंने एक दिन अपने बनाये हुए अस्पताल, विधवाश्रम तथा बाल विद्यालय के प्रमुख कार्यकर्ताओं को बुलाकर उनसे माफी मांगी और लड़खड़ाते स्वर में कहा "यदि आप लोग हम जैसों के बुरे कामों में सहायक न बनें तब हम निष्कंटक कुकर्मों में लिप्त न हों।"

दुर्गा के तीर का निशाना ठीक बैठ गया था। उसे पहले ही मालूम था कि छमिया गुप्त रोग से पीड़ित है। इसीलिए दुर्गा ने एक पत्थर से दो पक्षियों को मारा। छमिया को रोजी और ऐश मिली। सेठ महादेव के लिए विषकन्या का काम कर गई।

अंधा भिखारी, छोटे बच्चे के साथ एक-तारा बजाते हुए चला जा रहा था। स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे थे—'सुख दुख क्या है सब कर्मों का जैसी करनी वैसी भरनी।

नादानी

लगभग तीस वर्ष पुरानी बात है कानपुर के उपमानपुर कालोनी मे अभय ने अपनी मृत्यु से कुछ ही पहले अपनी मा से कहा था—'मैं समझता हू भगवान मुझे अब नही बचायगा।'

मा समझती थी कि इस मृत्यु का कारण अभय स्वय ही है।

सोलह वर्षीय अभय बारह बरस की आयु से ही बुरी सोहबत म पड गया था। वह पहले तो चोरी छिप तम्बाकू खाता रहा। अब दिन म दस-दस पुड़िया तम्बाकू की गुटका खाने लगा था। घर म मा और बडी बहन का पता चला तो वे बहुत नाराज हुई। उसने बहुत समझाया उसे परन्तु अभय को विश्वास नही हुआ कि तम्बाकू खाना या सिगरेट के रूप मे पीना किसी प्रकार हानिकारक हो सकता है। वह दलील देता— अरे बड़े-बड़े प्रोफेसर पीते हैं बडे बडे खिलाडी पीते हैं। टी॰ वी॰ पर सिनेमा गृह के छाया दवनिका पर तम्बाकू तथा सिगरेट के इश्तहार दिखाये जाते हैं। यदि तम्बाकू हानिकारक होता तो उसका प्रचार क्यो होता ?

बचपन से ही अभय अपने इरादे का पक्का था। वह सदा जो जचती थी वही करता था। विधवा मा एक उच्च विद्यालय मे प्रिंसिपल की नौकरी करके अपनी एक बेटी रूपल और एक बेटे अभय का किसी तरह पाल रही थी। अब अभय यह रोग ले बैठा था।

डाक्टर ने अभय को मुह खोलने को कहा। एक रुपये जितना सफेद दाग लाल चकत्तो के बीच अभय की जीभ पर साफ दिखाई दिया। डाक्टर

अग्रवाल न देखकर अभय को सचेत किया— 'अभय ! यह मुह म सूजन, लाल चकत्ते और फिर सफेद दाग़ तो खतर की घंटी है। इसकी 'बायप्सी' करनी होगी।"

अभय विशेषज्ञ अग्रवाल साहब की बात सुनकर दग रह गया। वह तो अभी तक दौड़ो म भाग लेता रहा है। अपन सेंट्रल स्कूल म बास्केट बॉल का कप्तान है। क्रिकेट खेलता है। उसम वह 'बस्ट-बालर' है। यदि वह किसी भयानक रोग स ग्रसित है तब वह यह सब करन मे समर्थ कैसे हो सकता था ?

वह न मोटा था न पतला। बीच का शरीर। छ फीट लम्बा कद और चौंसठ किलो वजन। वह खान पीने का भी ख्याल रखता था। उसको खेलने का शौक था इसीलिए स्वास्थ्य ठीक रह, इसके लिए वह प्रातःकाल दौड लगान जाता था।

अभय न डॉक्टर स कहा—"डॉक्टर साहब ! किस बात का खतरा ? मैं तो अच्छा खासा, हट्टा-कट्टा हू। खूब खेलता हू खाता हू, पीता हू।"

डाक्टर—"तुम तम्बाकू अथवा इसी प्रकार की कोई नशे की चीज काफी लेत होग। उससे भी यह हो सकता है।"

अभय ने झिझकते हुए कहा—"डॉक्टर साहब तम्बाकू खाता हू, सिगरट पीता हू तथा सुरती भी कभी कभी खाता हू। अगर ये खतरनाक होती तो इनकी डिबिया पर चेतावनी छपी होती।'

अभय डाक्टर साहब के पास से मा के साथ घर पहुचा। मा को लगा कि तीर हाथ स निकल गया था। अब तो अभय को घायल किए बिना नही रहेगा।

मा, अभय और बहन तीनो ही चुप थ। न काम मे मन लग रहा था, न खाली बैठे समय कट रहा था।

तीसरे ही दिन बायप्सी के पश्चात् मालूम हो गया कि अभय को कैंसर है। देर करने से मृत्यु के जल्दी आने का डर घर मे घुस आया था। सातवें दिन अभय के दायी ओर के कान के पास एक पेड के जड की तरह की गाठ उभर आयी थी। जीभ और एक ओर के जबडे को काटकर मरहम पट्टी की गई जिससे कैंसर की जडें आगे न बढ़ें। यह ऑपरेशन अभय

की स्वीकृति लेकर नहीं किया गया।

अभय का मन जार जार रो रहा था। वह अपने शरीर का सुगठित, सुंदर बनाये रखने का शौकीन था। दूसरो को बुरा न लगे इसलिए पान मे नही, वैसे ही तम्बाकू खाता था। उसकी पीक थूकने की बजाय अन्दर ही पी जाता।

कैंसर ने अपनी क्रूर दृष्टि अभी भी नहीं छोडी। अभय का चेहरा भयानक दीखने लगा था। वह सदा एक नरम वस्त्र दायी ओर ढक रखता था। वह अपने साथियो से मिलने म कतराने लगा था।

इसी वर्ष अभय का अपने स्कूल में 'बेस्ट खिलाडी' का एवार्ड मिलने वाला था। 26 जनवरी को वह एवार्ड और सम्मान पत्र उसके स्कूल के प्रिंसिपल स्वय लेकर अस्पताल पहुचे। आज उसका नीचे का पूरा जबडा ही ऑपरेशन करके निकाल दिया जाना था। यह आपरेशन कोई होगा छ-सात घण्टा का। प्रिंसिपल साहब न अभय के दोनो हाथ अपने हाथो म लिये। उसके प्रिय मित्र भी बधाई देने आए थे। अभय न एक टेढी-सी मुसकराहट मे उनका धन्यवाद किया।

डॉक्टर अग्रवाल ने प्रिंसिपल और मित्रो को कैंसर रोग के भयानक रूप से बढने की बात बताई थी। उडे ऑपरेशन के समय कमरे के बाहर अभय के मित्र आदि आशावादी बनकर आज भी भगवान, अल्ला, ईसा, नानक से प्रार्थना कर रहे थे कि उनके अच्छे से मित्र अभय की जान बख्श दे। वे कहते थे कि अभय का अच्छा स्वास्थ्य कैंसर जैसे रोग पर भी विजय पा लेगा।

ऑपरेशन हो गया। नलिया के द्वारा उसको खुराक पहुचाई जाती थी। दो महीने बाद ही अभय की गर्दन मे भी गाठें निकल आयी। स्कैनिंग करने पर स्पष्ट हो गया कि कैंसर की जडें एक ओर से नहीं वरन् घर को उखाड फकने वाले पीपल के पेड की तरह चारो ओर से बढ रही थी।

मा और बहन असहाय, भयभीत, डाक्टरो का मुह देखतीं और सोचतीं अभय की नादानी के विषय मे। अभय भी अपनी करनी के लिए भगवान से माफी मागता था। वह लिख लिखकर 'भगवान माफ करो' कहता।

फिर लिखता— 'मां ! ये सुरती तम्बाकू वाले व्यापारी इन डिबिया पर इनसे होने वाले खतरों से सावधानी क्यों नहीं लिखते।"

22 मार्च होली का दिन था। अभय को तम्बाकू, सुरती का ध्यान आया। उसका मन हुआ कि एक बार फिर तम्बाकू खाऊं और सुरती लगाऊं। दूसरे ही क्षण उसे अपनी हालत बिगड़ती अनुभव हुई। मां को इशारे से बुलाया। कागज पर दो बातें लिखीं—पहली कि अपने से बड़ों का कहना मानो। दूसरी कि तम्बाकू, सुरती, नशे की कोई भी चीज मत लो।

मां को पढ़कर प्रसन्नता भी हुई परन्तु बेटे की गिरती हालत पर अति दुख भी। बेटे ने एक चीख मारी और दूसरे क्षण ही अभय का देहांत हो गया।

अपने अन्तस्तल के अपार दुख की संतुष्टि के लिए मां-बेटी ने अनोखा ढंग निकाला। उन्होंने इन वस्तुओं के सेवन को रोकने के लिए विभिन्न जन-स्वास्थ्य विभागों के द्वार खटखटाये। ऐसी वस्तुओं के पैक्स पर सावधानियां लिखवायीं। स्वयं ने एक 'डी-एडिक्शन' संस्था खोली जिसमें बालक, युवा, जो भी इस बुरी आदत के शिकार हो जाते थे, उनको भर्ती करके उनके ये व्यसन दूर करने के उपाय करती थी। इसमें डॉक्टरों की सहायता भी ली जाती थी। यह संस्था 'अभय स्वास्थ्य केन्द्र' के नाम से स्थापित की गई। □

